UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182022

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·092/N45V Accession No. G.H.1112

Author नरोत्तमदास स्वामी।

Title वतूरी।

This book should be returned on or before the dat last marked below.

प्रकाशक
नवयुग-ग्रंथ-कुटीर
बीकानेर

मुद्रक-
गोपाल प्रिन्टिंग प्रेस
बीकानेर

सूचनिका

१) अवतरणिका ४

२) प्रस्तावना ५

३) संकलन १-९७

१ सूरदास २

२ तुलसीदास ३१

३ पृथ्वीराज राठौड़ ७४

४ सेनापति ८१

५ बिहारी ८८

४) टिप्पणी ९८

अवतरणिका

तत्त्व-तत्त्व सूरा कही तुलसी कही अनूठि।
बची-खुची कबिरा कही और कहि सब झूठि॥

सूर सूर तुलसी ससी उडुगण केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहं-तहं करहि प्रकास॥

कविता-करता तीनि हैं तुलसी केशव सूर।
कविता-खेती इन लुनी सीला बिनत मजूर॥

उत्तम पद कवि गंग के उपमा को बलबीर।
केशव अर्थ गंभीर को सूर तीन गुण धीर॥

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर की पीर॥
किधौं सूर को पद लग्यो तन मन धुनत सरीर॥

तुलसी गंग दुवौ भये सुकबिन के सरदार।
इन के काव्यन में मिली भासा बिबिध प्रकार॥

कलि कुटिल जीव निस्तार हित
बालमीक तुलसी भयो।

आनन्द-कानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसी तरुः
कविता, मंजरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल सं० १४०० से सं० १७०० तक माना जाता है। इस मध्यकाल के दो विभाग कर दिये जाते हैं। पूर्वार्ध में भक्ति संबंधी काव्य की प्रधानता रही अतः उसे भक्तिकाल कहते हैं और उत्तरार्ध में रीति-काव्य की प्रधानता रहने के कारण उसे रीतिकाल कहा गया है।

(क)

भक्तिकाल १४००—१७००

(१) सामान्य परिचय

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का सुवर्ण-युग है। इस काल ने उन कवियों को जन्म दिया जो हिंदी के ही सर्वश्रेष्ठ कवि नहीं हैं किन्तु जिनका विश्व कवियों में भी सम्मानपूर्ण स्थान है। यह काल तुलसी, सूर, कबीर, नानक, जायसी और मीरां का काल है। जनता में जितना प्रचार इस काल के कवियों का हुआ, जितना प्रभाव इस काल के कवियों का पड़ा, उतना किसी काल के कवियों का नहीं।

विक्रम की पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में समस्त उत्तरी भारत में भक्ति की एक अविच्छिन्न धारा सी उमड़ पड़ी। वैसे तो विक्रम के पूर्व की शताब्दियों में भी भक्ति के कई-एक संप्रदायों का अस्तित्व था पर उसके प्रधान प्रतिपादक दक्षिण भारत में तमिल प्रांत के आलवार थे जिनका समय विक्रम की तीसरी से लेकर दसवीं शताब्दी तक माना जाता है। इनकी संख्या १२ थी। इन में गोदा या आंडाल नामकी एक स्त्री भी थी। शठकोप मुनि इन में सब से प्रसिद्ध हुए। ये लोग अधिकतर समाज के निम्न स्तरों से— नीची कही जाने वाली जातियों से—आये थे। पढ़े-लिखे भी ये लोग साधारण ही थे पर अनुभवी थे। इनकी रचनाएँ अपने समय की प्रचलित लोकभाषा में है। आलवारों के बाद आचार्यों की परंपरा आरम्भ हुई। ये लोग ब्राह्मण और वेदशास्त्रों के पारगामी विद्वान थे। इन में सब से प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक रामानुजाचार्य (१०७४-११६४) हुए। उन ने विष्णु की भक्ति का उपदेश दिया।

रामानुज के कुछ पश्चात ही कई और वैष्णव आचार्य हुए। रामानुज का सम्प्रदाय श्री-सम्प्रदाय कहलाता है। वे विशिष्टाद्वैतवादी थे। मध्वाचार्य (१२५४-१३३३) का सम्प्रदाय ब्रह्म-संप्रदाय कहलाता है। ये द्वैतवादी थे। विष्णुस्वामी का सम्प्रदाय रुद्र-सम्प्रदाय कहलाता है। निंबार्काचार्य ने द्वैताद्वैत की प्रतिष्ठा की। उनके सम्प्रदाय का नाम

सनकादि-सम्प्रदाय है। इन सम्प्रदायों ने भगवान के कृष्ण रूप की उपासना का उपदेश दिया।

रामानुजाचार्य की शिष्यपरंपरा में स्वामी रामानंद (१३५५-१४६६) हुए। रामानंद मध्यकालीन भारत के सब से बड़े महागुरु कहे जा सकते हैं। उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। वे संस्कृत और शास्त्रों के बड़े भारी विद्वान् थे। उनने सांप्रदायिक कट्टरता में कमी की। यद्यपि वे वर्णाश्रम धर्म के पूर्ण समर्थक थे फिर भी तात्विक दृष्टि से ऊँच-नीच सभी को समान समझते थे। उनकी दृष्टि में भगवान की भक्ति करने का अधिकारी कोई भी हो सकता है।

जाति-पाति पूछै नहीं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

स्वयं उनके शिष्यों में सभी जातियों के व्यक्ति थे। भवानंद ब्राह्मण थे, पीपाराजपूत, धन्ना जाट, सेन नाई, रैदास चमार और सदना कसाई। इनके सर्वप्रसिद्ध शिष्य कबीर मुसलमान थे।

रामानन्द और उनके शिष्यों ने समस्त उत्तरी भारत को भक्ति की धारा में आप्लावित कर दिया। इसी समय के कुछ आगे-पीछे महाराष्ट्र में नामदेव, एकनाथ, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि का, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का, गुजरात में नरसिंह मेहता का और राजस्थान में मीरां का आविर्भाव हुआ।

विष्णुस्वामी की परम्परा में महाप्रभु बल्लभाचार्य हुए। उनने कृष्ण भक्ति का उपदेश दिया। उनका प्रभाव दूर-दूर तक पहुँचा उनके शिष्य तथा प्रशिष्य अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि हुए। इनकी आठ वीणाओं ने कृष्ण भक्ति का ऐसा गान गाया कि उसे घर-घर पहुँचा दिया।

माध्व सम्प्रदाय के अन्तर्गत गोसाईं हितहरिवंश ने राधावल्लभी संप्रदाय की स्थापना की। इस सम्प्रदाय में स्वयं हितहरिवंश और उनके शिष्य हरिराम व्यास (व्यासजी) प्रसिद्ध कवि हुए।

निम्बार्क सम्प्रदाय के अंतर्गत स्वामी हरिदास ने टट्टी-सम्प्रदाय की स्थापना की। ये स्वयं अच्छे कवि और संगीतज्ञ थे। प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन इनके शिष्य थे।

इस भक्ति सम्प्रदाय के साथ-साथ उस समय दो और संप्रदाय साधना-क्षेत्र में वर्त्तमान थे--(१) योग संप्रदाय और (२) सूफी सम्प्रदाय। योग सम्प्रदाय का विकास बौद्ध धर्म की तांत्रिक वज्रयान शाखा से हुआ। सम्वत् ९०० औ १२०० के बीच में वज्रयान के प्रसिद्ध चौरासी सिद्ध हुए। इनमें मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ) और गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) भी हैं जो योग सम्प्रदाय के सबसे प्रसिद्ध आचार्य हैं। वज्रयानी नाममात्र के बौद्ध थे पर योग-सम्प्रदायी शैव हैं। वज्रयानी ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते थे पर योगी निर्गुण निराकार

ईश्वर को मानते हैं और उसको हृदय में देखते हैं। आलवारों की भांति योग-संप्रदाय के अनेक महात्मा नीची जातियों से आये थे और उनकी भांति इन ने भी लोकभाषा में अपने उपदेश दिये थे जिससे साधारण जनता में उनका काफी प्रचार हुआ।

सूफी मत विदेशी है। वह हिन्दुओं के अद्वैतवाद (विशिष्टाद्वैतवाद अधिक ठीक होगा) से कुछ मिलता-जुलता है। मुसलमानी धर्म कट्टर एकेश्वरवादी है। वह प्रकृति के पदार्थों में ईश्वर की कला देखने को कुफ्र समझता है। कुछ मुसलमान इस बात से संतुष्ट नहीं हुए। वे ईश्वर को सर्वत्र छिपा हुआ देखने लगे। ये लोग सूफी कहलाये। मुसलमानों की सत्ता के साथ ये लोग भी भारत में आये। ये पहले पंजाब और सिंध में आकर बसे फिर सारे देश में फैल गये। भारत में उस समय भक्ति की देशव्यापी लहर उमड़ रही थी। सूफियों की साधना अधिकांश में तत्कालीन संतों के अनुकूल सिद्ध हुई।

भक्ति-संप्रदाय, योग-संप्रदाय और सूफीमत के तत्वों को लेकर कबीर ने निर्गुण सन्त मत की प्रतिष्ठा की। निर्गुण सन्त निर्गुण और निराकार ईश्वर की भक्ति करते थे।

सूफी मत के अनुयायी फकीरों ने भी हिंदी में काव्य-रचना की जिस में उन ने ईश्वर के प्रेम पर जोर दिया। ये भी निर्गुण और निराकार ईश्वर को मानते थे।

इस प्रकार भक्ति काव्य की दो धाराएँ और चार शाखाएँ हुईं-

(१) सगुणधारा— (१) रामशाखा

(२) कृष्णशाखा

(२) निर्गुणधारा— (३) ज्ञानमार्गी शाखा
(४) प्रेममार्गी शाखा

राम-शाखा में सब से बड़े कवि तुलसीदास हुए जो हिंदी के सर्व-श्रेष्ठ कवि हैं। कृष्ण-शाखा के कवियों में अष्टछाप के आठ कवियों के अतिरिक्त हितहरिवंश, स्वामी हरिदास, व्यासजी, मीराबाई और रसखान प्रमुख हैं। ज्ञानमार्गी निर्गुण शाखा के प्रधान कवि कबीरदास, रदास, नानक, दादूदयाल, और हरिदास दयालजी हैं। प्रेममार्गी शाखा के प्रथम कवि कुतबन माने जाते हैं। उन के बाद मलिक मुहम्मद जायसी हुए जो इस शाखा के सर्वप्रधान कवि हैं। अन्य कवियों में उसमान और नूरमुहम्मद उल्लेखनीय हैं।

इस काल में कविता की प्रधान भाषा ब्रजभाषा रही। प्रेममार्गी कवियों ने अवधी में रचना की। तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों में लिख कर दोनों पर अपना समान अधिकार प्रदर्शित किया। इस काल की अधिकांश कविता पदों में लिखी गई।

सूर

सूरदास एक मत के अनुसार ब्राह्मण और दूसरे मत के अनुसार भाट थे। उन का जन्मस्थान कुछ लोग दिल्ली के पास सीही गांव को, और कुछ लोग आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क पर स्थित रुनकता को मानते हैं। बादशाह अकबर के दरबार में रामदास नाम के एक गायक थे। उन के पुत्र का नाम भी सूरदास था। कई विद्वानों का मत है कि हमारे चरितनायक सूर यही सूरदास हैं। पर इस मत को स्वीकार

करने में कुछ बाधा आती है। अकबर संवत् १६१३ में राजगद्दी पर बैठा था। सूरदास का जन्म अधिक से अधिक देर में हुआ हो तो भी संवत् १५६० के पूर्व ही हुआ होगा। इस प्रकार अकबर के बादशाह होने के समय उनकी अवस्था ५३ वर्ष के ऊपर ही होती है। उस उम्र में उनका पिता के साथ बादशाह के दरबार में नौकरी करना संभव नहीं जान पड़ता। संवत् १५८७ के पूर्व ही सूरदास महाप्रभु बल्लभाचार्य द्वारा दीक्षित हो चुके थे। महाप्रभु की शरण में जाने के बाद भी उनका बादशाह की नौकरी में रहना मानने में नहीं आता। फिर कहते हैं कि बादशाह ने सूरदास का गाना सुनने के लिए उन को विशेष रूप से दरबार में बुलवाया था। यदि सूर दरबार के गायक रहे होते तो बादशाह को गाना सुनने के लिए उन्हें बुलाने की आवश्यकता न होती।

सूरदास का समय साधारणतया १५४० से १६२० तक माना जाता है। कुछ लोगों ने १५४० से १६४२ तक माना है।

सूरदास अन्धे थे पर जन्मान्ध थे या बाद में अन्धे हुए यह निश्चित नहीं है। अधिक राय यह है कि वे जन्मांध न थे क्योंकि उन ने प्राकृतिक दृश्यों तथा रंगरूप आदि का जो वर्णन किया है वह जन्मांध के लिए सम्भव नहीं जान पड़ता।

युवावस्था में सूरदास मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर रहते थे और भगवद्भजन करते थे। वे गान बहुत अच्छा करते थे। विनय के अनेक पद भी उन ने रचे थे। एक बार महाप्रभु बल्लभाचार्य वहां पधारे तो सूरदास उन के दर्शनार्थ गये। महाप्रभु ने सूर का सत्कार कर के भगवद्-यश गाने को कहा। तब सूर ने अपने विनय

के दो पद सुनाये। अत्यन्त दैन्यभाव से भरे उन पदों को सुनकर महाप्रभु ने कहा— ऐसे घिघियाते क्यों हो, कुछ भगनान की लीला वर्णन करो। सूर ने कहा— महाराज, लीला तो मैं कुछ जानता नहीं। तब महाप्रभु ने उन को स्नान कर के आने को कहा। स्नान कर के आने पर उन ने सूर को दीक्षा दी और भागवत के दशम स्कंध की अनुक्रमणिका कही। महाप्रभु के उद्बोधन ने सूर की सुप्त प्रतिभा को सहसा जागरित कर दिया। बाह्य दृष्टि बन्द थी पर अन्तर्दृष्टि खुल गयी। जब महाप्रभु ब्रज पधारे तो सूर भी उन के साथ वहीं चले आये। गोकुल में आने पर उन्हें बाललीला-वर्णन की स्फुरणा हुई और बाललीला के पद बनाये। कुछ समय पश्चात् महाप्रभु ने अपने इष्टदेव श्रीनाथजी के कीर्त्तन की व्यवस्था सूरदास को सौंप दी।

सूरदासजी ने हजारों पद बनाये। उनकी ख्याति सुनकर बादशाह ने उन को अपने दरबार में बुलाया। सूर ने उस के सामने भगवान की लीला के पद गाकर सुनाये। उसने अपना यश वर्णन करने के लिए सूर से कई बार कहा पर सूर ने बराबर भगवद्-यश-विषयक पद ही गाये।

महाप्रभु के देहान्त के बाद उन के पुत्र बिट्ठलनाथजी उन की गद्दी के अधिकारी हुए। बिट्ठलनाथजी ने चार अपने पिता के और चार अपने इस प्रकार आठ महात्माओं की अष्टछाप नाम की मंडली बनायी जिस में सूरदासजी का प्रमुख स्थान था।

सूरदासजी के लिखे तीन ग्रंथ मिलते हैं— (१) सूरसागर, (२) सूरसारावली और (३) साहित्यलहरी। सूरसारावली सूरसागर की विषय-सूची सी है और साहित्यलहरी में कूट पदों का संग्रह है। सूरसागर ही

उनका प्रधान ग्रंथ है। सूरसागर में सूर के समय-समय पर लिखे हुए पदों का संग्रह है। कहते हैं कि सूर ने लाख, अथवा सवा लाख, पद बनाये थे पर इस समय चार-पांच हजार से अधिक नहीं मिलते। श्री राधाकृष्णदास द्वारा संपादित संस्करण में ४१३२ पद हैं। इसका एक प्रामाणिक संस्करण काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

सूरसागर भागवत पुराण के आधार पर लिखा गया है और इसकी भांति बारह स्कंधों में विभाजित है पर वह भागवत का अनुवाद बिल्कुल नहीं है। भागवत की भाँति वह प्रबंधकाव्य भी नहीं है। भागवत से सूर ने केवल कथा-क्रम ही लिया है। भागवत में वर्णित कथाओं को वे बहुत संक्षेप में कह गये हैं। सूर के प्रधान विषय तो विनय, कृष्ण की बाल लीला, गोपीकृष्ण और राधाकृष्ण की प्रेम-लीला, तथा गोपी विरह और भ्रमरगीत हैं। उन ने सूरसागर का दस में से नौ भाग घेर रखा है। भागवत में भी इनका वर्णन है पर अत्यन्त संक्षेप में। इस प्रकार सूरसागर का अधिकांश सूर की मौलिक रचना है।

सूरसागर एक सुन्दर गीतकाव्य है। राग-रागनियों का यह अक्षय भंडार है। गायक-समाज में सूर के भजनों का बड़ा प्रचार है। उनका प्रचार उत्तर भारत तक ही सीमित नहीं किंतु दक्षिण भारत के गायक-समाज में भी उसी प्रकार है। कबीर और मीरां के भजनों की भांति सूर के भजनों के बिना गायक-समाज का काम नहीं चल सकता।

[illegible] रचना है [illegible] उस में भाषा की अपूर्व प्रौढ़ता [illegible] उस

महाकवि के लिए ही संभव था। ब्रजभाषा एक प्रादेशिक बोली से उत्तराखंड की सर्वप्रधान साहित्यिक भाषा बन गयी इसका सूर को कम श्रेय नहीं है।

सूर की भाषा स्वाभाविक प्रवाहमय, माधुर्यपूर्ण तथा संगीतमय है। कहीं-कहीं व्याकरण-विरोध अथवा क्लिष्टता आदि दोष आ गये हैं पर जो अंश भावावेश पूर्ण हैं उन की भाषा सुसगठित, सुबोध और चलती हुई है। सूर की भाषा साहित्यिक है। संस्कृत शब्दों का उस में खूब प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश के पुराने शब्द और रूप भी काफी मिलते हैं। कहीं-कहीं राजस्थानी, पूरबी और पंजाबी शब्द भी दृष्टि-गोचर होते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास के पीछे सूरदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं शुद्ध काव्य की दृष्टि से देखा जाय तो उन का स्थान तुलसी से कम नहीं किंतु कुछ बढ़ कर ही जान पड़ेगा। अवश्य ही उन की कविता का प्रभाव उतना व्यापक नहीं हुआ जितना तुलसी की कविता का हुआ। साथ ही उन का काव्यक्षेत्र तुलसी की तुलना में परिमित भी है। तुलसी ने संपूर्ण मानवजीवन को अपने काव्य का विषय बनाया है पर सूर का काव्यक्षेत्र प्रेम के विविध रूपों तक ही सीमित है। जीवन की जितनी परिस्थितियों, दशाओं और वृत्तियों का चित्रण तुलसी ने किया है उतनी का सूर ने नहीं किया परन्तु प्रेम के अन्तर्गत जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके उतनी का हिंदी का और कोई भी कवि नहीं कर सका।

वात्सल्य और शृंगार के सूरदास सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। बालजीवन का ऐसा मार्मिक वर्णन करनेवाला कवि संसार के साहित्य में भी

कदाचित ही मिले। बालकों के स्वभाव, और उनकी विविध चेष्टाओं और कार्यों का सूर ने जो चित्र अंकित किया है वह बड़ा ही स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक और हृदयस्पर्शी है। जो लोग रात-दिन बालकों के साथ रहते हैं वे भी ऐसा मार्मिक वर्णन नहीं कर सकते जो सूर ने वैरागी और अंधा होते हुए किया है। इस के साथ ही माता के स्नेहपूर्ण हृदय का चित्रण भी उन ने उसी भावुकता के साथ किया है। माता के हृदय का जितना ज्ञान सूर को था उतना किस को हो सकता है? उस की उमंगों का, अभिलाषाओं का, आशंकाओं का, और आकुलता का सूर ने जो चित्र खींचा है वह अत्यन्त हृदयग्राही है। श्रीहजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'सूरदास जहां पुत्रवती माता के प्रेम-पेलव हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं वहां वियोगिनी माता के करुणा-विगलित हृदय को भी उसी सतर्कता से छू सके हैं।

सूर हिंदी के सब से बड़े शृंगार कवि हैं। रीतिकाल में यद्यपि शृंगारकाव्य की प्रधानता रही तो भी कोई रीतिकालीन कवि शृंगार-वर्णन में सूर से आगे नहीं बढ़ सका। प्रेम के इतने विचित्र रूपों का साक्षात्कार हिंदी के किसी अन्य कवि ने नहीं किया। संयोग और विप्रलंभ— शृंगार के इन दोनों का सूर ने विस्तृत वर्णन और पूर्ण चित्रण किया है। संयोग शृंगार का तो सूर ने ऐसा सांगोपांग वर्णन किया है कि पिछले कवियों के लिए कुछ नहीं छोड़ा। रीतिकालीन कवियों की कविता सूर की जूठन जान पड़ती है।

सूरदास ने शृंगार के भाव और विभाव दोनों पक्षों का विस्तार से वर्णन किया है। राधा और कृष्ण के रूपवर्णन में उन ने सैकड़ों पद कहे हैं। यह रूपवर्णन अलंकारप्रधान है। उद्दीपनों के रूप में

सूर प्रकृति के विभिन्न रूपों, व्यापारों और दृश्यों का मनोहर चित्रण किया है। संचारी भावों और अनुभावों का सूरसागर अखूट खजाना है। उन का वैसा बाहुल्य अन्यत्र दुर्लभ है।

सूर ने जिस प्रेम का वर्णन किया है वह केवल रूप-लिप्सा-जनित एक क्षणिक घटना नहीं है। प्रतिदिन साथ रहते, साथ-साथ खेलते-कूदते, साहचर्य द्वारा धीरे धीरे उसका विकास हुआ है। बचपन के खेल के साथी ही आगे चल कर यौवन-क्रीड़ा के भी साथी बन जाते हैं।

सूर की राधा साहित्य-जगत की एक अनुपम कृति है। कृष्ण के साथ उस का संबंध केवल युवाकाल का ही नहीं है वह कृष्ण की बाल-संगिनी है। वाग्विदग्धता (wit) सूर की राधा का एक विशेष गुण है जो उस के चरित्र में ओतप्रोत है। पहले ही दिन उसे देख कर कन्हैया उस की ओर आकर्षित होते हैं। परिचय बढ़ता है। साथ साथ खेलते-खिलाते हैं। धीरे-धीरे आकर्षण बढ़ता है और प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। प्रेमोदयकाल में प्रेमियों में जो विनोद की, परस्पर छेड़छाड़ की, प्रवृत्ति पाया जाती है उस की ओर भी सूर ने ध्यान दिया है और उसका खूब ही सजीव वर्णन किया है। दानलीला का प्रसंग भी इसी प्रकार का है।

गोपी-कृष्ण की प्रेमलीला के प्रसंग में सूर ने मुरली के संबंध में भी सैकड़ों पद कहे हैं। कृष्ण की चिरसंगिनी मुरली ने क्या चर, क्या अचर, सारी प्रकृति को मुग्ध कर रखा है, उस की जादू-भरी स्वरलहरी ने चराचर जीवों की प्रकृति ही बदल डाली है। उस मुरली को सुनने की ब्रजवासियों की प्यास कभी बुझती ही नहीं। उनका हृदय मानो सदा पुकारता रहता है— छबीले, मुरली नेकु बजाउ।

संयोग के साथ वियोग संसार का नियम ही ठहरा। कृष्ण अपने स्नेहालु माता-पिता, प्यारे सखाओं, प्रेमिका गोपियों और प्राणोपम राधा को छोड़ कर मथुरा चले जाते हैं। इस वियोग का वर्णन भी सूर ने वसी ही मार्मिकता से किया है। वियोग की अवस्था में जितनी भी मानसिक दशाएँ हो सकती हैं सब तक सूर की अन्तर्दृष्टि पहुँची है। 'परम्परा से चले आते हुए चन्द्रोपालंभ आदि सब विषयों का विधान सूर के वियोग-वर्णन के भीतर है।' कोई बात छूटी नहीं है।

सूर के वियोग-वर्णन का सब से सुन्दर अंश भ्रमरगीत है। वह शृंगार साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपालंभ-काव्य है।

सूर ने तुलसी की विनयपत्रिका के ढंग के बहुत से विनय के पद भी लिखे हैं। वे बड़े ही भावपूर्ण और काव्य-मय हैं। तुलसी के विनय पदों में दार्शनिकता की पुट अधिक है— उन की शैली दार्शनिकता के बोझ के नीचे दबी सी है पर सूर की शैली सर्वत्र सरल और सुबोध है। इन पदों में भगवान की भक्त-वत्सलता, अपनी दीनता, उद्धार के लिए भगवान से विनय, माया की महिमा, ईश्वरीय लीला की विचित्रता और अगोचरता, जन्म को व्यर्थ खो देने पर पश्चाताप, मन को चेतावनी आदि विषयों का सुन्दर वर्णन है।

इस प्रकार वात्सल्य, दांपत्य, भक्ति आदि प्रेम के विविध रूपों का सूर ने अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है।

तुलसी की भांति सूर की कविता भी विद्वान् और साधारण जन सब को समान रूप से आनन्द देनेवाली है। उस का भाव

सौन्दर्य अनुपम है। काव्य के विविध अङ्गों का उस में यथावत् सन्निवेश मिलेगा। अलङ्कार-प्रेमी अलङ्कारों की सुन्दर योजना देख कर प्रसन्न होंगे। वैसे तो सूर की कविता में सभी अलङ्कारों का खूब प्रयोग मिलता है पर उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। रूपवर्णन करते समय तो कवि पर मानो अलङ्कारों की झक सी चढ़ जाती है और वह उपमा-पर-उपमा तथा उत्प्रेक्षा-पर-उत्प्रेक्षा कहता चला जाता है। अनुप्रास, यमक आदि वाह्य-सौन्दर्य के और चित्रकाव्य के प्रेमियों को भी सूर ने निराश नहीं किया है। सूर के दृष्टिकूट साहित्य-संसार में काफी प्रसिद्ध हो चुके हैं।

प्रकृतिवर्णन जहां सूर ने किया है बहुत सुन्दर किया है। वह मुख्यतया उद्दीपन के ही रूप में हुआ है पर कई स्थलों में स्वतन्त्र रूप से भी किया गया है।

सूर-काव्य की प्रधान विशेषता विनोद-मयता है। सूर बड़े विनोदी थे। उन की रचना में सर्वत्र विनोद का अन्तः प्रवाह प्रवहमान है। कृष्ण की बाल-लीला के वर्णन में वे देवताओं से भी विनोद करते हुए नहीं चूकते। नन्द के इष्टदेव शालिग्रामजी को उन ने बालकृष्ण के मुख में पहुँचा ही दिया। यशोदा से पुत्रजन्म की बधाई लेने महराने से जो पांड़े जी आये उनको सूर के कन्हैया ने खूब ही छकाया। इस प्रकार कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं, राधा-कृष्ण की लीलाओं और गोपियों और कृष्ण के प्रसंगों में सब कहीं सूर की विनोद-सरिता बहती हुई दिखाई पड़ती है। कृष्ण के साथ मथुरा गये हुए गोपबालक जब लौट कर

आते हैं तो राजवंशी कृष्ण का कैसा विनोदमय वर्णन करते हैं। योग-वर्णन में भी सूर विनोद को नहीं भुला सके। उद्धव और गोपियों के संवाद में जगह-जगह विनोद मिलेगा। सूरदास ने अनेक कूट पदों की रचना की है। उन्हें भी सूर की विनोद-वृत्ति का ही फल कहना चाहिए। सूर के कृष्ण विनोदी, सूर की राधा विनोदी, सूर के ग्वाल विनोदी, सूर की गोपियाँ विनोदी। इन विनोदियों की विनोद-लीला गानेवाला कवि सूर भला क्यों न विनोदी होगा! सूर के ही शब्दों को थोड़ा परिवर्तित कर के क्या हम नहीं कह सकते—

सूर विनोदी रे मधुबनिया!

तुलसी

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में भी बहुत मतभेद है। अधिक मत के अनुसार वे सरयूपारी दुबे ब्राह्मण थे और उन का जन्म राजापुर (जिला बांदा) में हुआ था। उन का जन्म-संवत् उन की शिष्य-परम्परा में संवत् १५५४ माना जाता है और जन्म तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी। गोस्वामीजी बचपन में ही मातृ-पितृ-हीन हो गये थे। नरहरिदास नाम के एक महात्मा ने उन का पालन-पोषण किया और उन को राम कथा सुनायी। बड़े होने पर उन का विवाह हुआ। उन की स्त्री का नाम रत्नावली था। प्रसिद्ध है कि वे अपनी स्त्री से बहुत प्रेम करते थे। एक बार जब वे बाहर गये हुए थे उन की स्त्री अपने भाई के साथ पीहर चली गयी। तुलसी को जब

इस बात का पता लगा तो वे रातोरात बरसते पानी में नदी पार कर के स्त्री के पास पहुँचे। इस से वह बहुत लज्जित हुई और उस ने उन्हें फटकारते हुए कहा—

लाज न लागति आपु कौ, दौरे आयेउ साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम कौ, कहा कहौं मैं नाथ॥
हाड-मांस की देह मम, ता पर जितनी प्रीति।
तसु आधी जो राम प्रति, अवसि मिटसि भव-भीति॥

यह कथन तुलसी को बहुत लगा और वे तुरंत वहां से काशी चले आये, और विरक्त हो गये। उत्कट पत्नी-प्रेम सहसा उत्कट राम-भक्ति में बदल गया। विरक्त होने के बाद उन ने दूर-दूर तक का भ्रमण किया और साधुओं का सत्संग करते रहे। अयोध्या और काशी उन के मुख्य निवास-स्थान थे। उन का देहांत संवत् १६८० में श्रावण कृष्ण तृतीया के दिन काशी में अस्सीघाट पर हुआ। उन के परम मित्र टोडर के वंशज अभी तक इस दिन तुलसी के नाम पर ब्राह्मण को सीधा दिया करते हैं।

गोस्वामीजी अपने समय के प्रसिद्ध महापुरुष थे। उस काल के अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति उन के मित्र अथवा परिचित थे। इन में कविवर रहीम, महाराजा मानसिंह, भक्तमाल के रचयिता नाभादास, संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन सरस्वती, ठाकुर टोडर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कहते हैं कि सूरदासजी से भी उन की भेंट हुई थी। मीरां के साथ भी उन का पत्र-व्यवहार हुआ था। ठाकुर टोडर काशी के जमींदार थे।

गोस्वामीजी को भी उन से बड़ा प्रेम था। उन ने किसी मनुष्य की प्रशंसा में कभी कुछ नहीं लिखा पर टोडर की मृत्यु पर उन ने कुछ दोहे उन की स्मृति में कहे थे (यद्यपि इन में भी राम-महिमा को वे नहीं भूले)।

तुलसी के नाम से पचासों ग्रंथ प्रसिद्ध हैं पर निम्न लिखित चौदह ही प्रामाणिक माने जाते हैं --

(१) रामलला नहछू, (२) वैराग्य संदीपनी, (३) बरवै रामायण, (४) पार्वतीमंगल, (५) जानकीमंगल, (६) रामाज्ञा, (७) दोहावली, (८) तुलसी-सतसई, (९) रामचरितमानस, (१०) कवितावली, (११) हनुमानबाहुक, (१२) गीतावली, (१३) कृष्णगीतावली, (१४) विनयपत्रिका।

इन में प्रथम नौ अवधी में लिखे गये हैं और पिछले ५ ब्रजभाषा में। (१) **रामललानहछू** में श्रीराम और उन के भाइयों के नहछू उत्सव का वर्णन है। (२) **वैराग्य संदीपनी** में वैराग्य विषय का वर्णन है। (३) **बरवै रामायण** में बरवै छंद में रामायण की कथा अत्यन्त संक्षेप में कही गयी है। यह बड़ी ही मधुर और भावपूर्ण रचना है। (४) **पार्वतीमंगल** में शिव-पार्वती के विवाह की कथा है। (५) **जानकीमंगल** में राम के धनुष तोड़ने और सीता-राम के विवाह का वर्णन है। (६) **रामाज्ञा शकुनावली** है। इस में रामचरित्र सम्बन्धी दोहे हैं। यह शकुन लेने के लिए लिखी गयी थी। (७) **दोहावली** में भक्ति आदि विविध विषयों के दोहे हैं। इस का चातक-प्रेम-प्रसंग बड़ा ही ललित है। उस में कवि ने प्रेम का उत्कृष्ट

आदर्श उपस्थित किया है। (८) **तुलसी-सतसई** को **राम-सतसई** भी कहते हैं। इस में भी विविध-विषयक दोहे हैं जिन में से बहुत से दोहावली के हैं। (९) **कवितावली** में रामचरित्र संबंधी प्रकीर्णक कवित्त और सवैया छंद हैं। यह केशव, गङ्ग आदि रीति-कवियों की शैली पर लिखा गया है। इस की कविता बहुत मनोहर है। भाषा भी इस की बड़ी मधुर है। इस के उत्तरकांड में विनय के छन्द हैं। इस में के कुछ पद्यों में कवि ने अपने जीवन पर भी कुछ प्रकाश डाला है। (१०) **हनुमान-बाहुक** में हनुमानजी की विनय के कवित्त हैं। (११) **गीतावली** में विविध राग-रागिनियों के पदों में सूरसागर की शैली पर राम-चरित्र का वर्णन किया गया है। (१२) **कृष्णगीतावली** में कृष्ण की बाललीला, गोवर्द्धन धारण और गोपी-विरह तथा भ्रमरगीत के पद हैं। (१३) **विनयपत्रिका** में विनय के पद हैं। आरम्भ के कुछ पदों में विविध देवी-देवताओं की स्तुतियां हैं जिन की भाषा अत्यन्त संस्कृत-गर्भित है। इस ग्रंथ में कवि ने अपनी दीनता का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया है। इस में भक्त तुलसी-दास के हृदय का वास्तविक दर्शन होता है। शांतरस और भक्ति-भाव के उत्कर्ष का ऐसा प्रवाह अन्यत्र दुर्लभ है। (१४) **रामचरितमानस** लोगों में साधारणतया रामायण नाम से प्रसिद्ध है। इस में भगवान रामचन्द्रजी का चरित्र बड़े विस्तार से वर्णित किया गया है। इस में सात सोपान (कांड) हैं। इस की रचना मुख्यतया अध्यात्म-रामायण के आधार पर हुई है पर स्थान-स्थान पर पुराणादि अन्यान्य ग्रंथों का भी सहारा लिया गया है। इस प्रकार यह समस्त हिन्दू धर्म ग्रंथों का निचोड़ है।

उत्तर भारत की जनता में जितना प्रचार इस ग्रंथ का हुआ उतना किसी का नहीं। इस का भाव-गांभीर्य बड़े-बड़े विद्वानों मुग्ध करता है। इस की भाषा अवधी है। वह हिंदी का सर्व-श्रेष्ठ प्रबंधकाव्य है।

तुलसी अपने समय के असाधारण प्रतिभाशाली महा-पुरुष और महान लोकनायक हुए। डाक्टर ग्रियर्सन के कथना-नुसार बुद्ध के बाद भारत में सब से बड़े लोकनायक तुलसीदास ही थे। हिंदू-जीवन पर तुलसी का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे हिंदू-धर्म और हिंदू-जाति के संरक्षक के रूप में अवतरित हुए। उन ने विनाश के किनारे खड़े हुए हिंदू धर्म को सहारा दिया और घोर नैराश्य के गंभीर गर्त में निमग्न हिंदू जाति में नव-जीवन का संचार कर उस की रक्षा की। उन के राम आज हिंदू-जीवन के रोम रोम में रम गये हैं।

लोकसंग्रह पर गोस्वामीजी की पूर्ण दृष्टि थी। हिंदू समाज के भिन्न-भिन्न संप्रदायों के पारस्परिक विद्वेष को कम करने के लिए उन ने बहुत प्रयत्न किया। उस समय वैष्णव, शैव, शाक्त निर्गुण आदि विभिन्न संप्रदायों में सत्यानाशकारी द्वेषभाव उठ खड़ा हुआ था। उस का भयङ्कर रूप दक्षिण भारत में आज भी वर्त्तमान है। पर महात्मा तुलसी की कृपा से उत्तरी भारत में वह सिर न उठा सका। शङ्कर को श्रीराम का और श्रीराम को शङ्कर का आराधक बता कर उन ने दोनों के महत्व का प्रतिपादन किया।

तुलसी की समन्वय-शक्ति बड़ी गजब की थी। 'उस समय

सारा देश विशृंखल, परस्पर विच्छिन्न, आदर्शहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था। एक ऐसे आदमी की आवश्यकता थी जो इन परस्पर विभिन्न और दूर-विभ्रष्ट टुकड़ों में योग-सूत्र स्थापित करे।' तुलसी ने यही कार्य किया। विविध विचार पद्धतियों, विविध भावनाओं और विविध साधना-मार्गों का समन्वय करने में उन्हें अपूर्व सफलता मिली। शैव और वैष्णव, सगुण और निर्गुण, ज्ञान और भक्ति, सब का समन्वय उन की रचनाओं में मिलता है। इस प्रकार सामंजस्य स्थापित कर के उन ने हिंदू समाज के विविध अङ्गों में एकता का भाव उत्पन्न किया। समाज और परिवार-संबंधी ऊंचे आदर्श खड़े कर के उन ने हिंदू जाति के जीवन को सबल और सुखी बनाने का प्रयत्न किया उन की वाणी जीवन को ऊंचा उठाने वाली है। उस में सर्वत्र पवित्र भाव भरे हुए हैं। उन का शृंगार वर्णन भी बड़ा पावन और मर्यादापूर्ण है।

हिंदू जाति के जीवन पर तुलसी का जितना प्रभाव है उतना और किसी कवि का नहीं। उन की रचना का आज घर घर प्रचार है। साक्षर और निरक्षर, विद्वान और मूर्ख, बड़े और छोटे सभी उन की रचना को पढ़ कर आनन्द प्राप्त करते और लाभ उठाते हैं। उन की सैकड़ों सूक्तियां जनता की जबान पर हैं और अवसर-अवसर पर कहावतों की भांति ही नहीं धर्म वाक्यों की भांति भी काम में लायी जाती हैं। उन का 'मानस' आज उत्तर-भारत का सर्वप्रधान धर्मग्रंथ हो रहा है। हिन्दुओं के वेद आदि धर्मशास्त्र जनसाधारण की पहुँच के बाहर हैं।

उन्हें जब धर्म-सम्बंधी व्यवस्था जाननी होती है वे मानस का ही सहारा लेते हैं। सामाजिक परिवारिक और राजनीतिक आदर्शों के लिये भी उसी की ओर निर्देश किया जाता है।

महान लोकनायक होने के साथ ही तुलसी महान कवि भी थे। वे हिंदी के सर्वश्रेष्ट कवि हैं। कवियों में उन का आदरणीय स्थान है। उनका काव्य आत्मा की स्वाभाविक प्रेरणा से लिखा गया है। इसीलिये वह स्वाभाविक और प्रभावशाली हुआ है।

तुलसी का काव्यक्षेत्र अन्यान्य हिंदी कवियों की भाँति सीमित नहीं। वह समस्त मानव-जीवन तक व्याप्त है। मानव-जीवन की जैसी विशद व्याख्या तुलसी ने की वैसी हिंदी का और कोई कवि नहीं कर सका है। अनेक-रूप मानव-जीवन की कोई ऐसी परिस्थिति नहीं जिस तक उन की सूक्ष्म दृष्टि न पहुँची हो। उन की चरित्र-चित्रण-शक्ति हिंदी में अनुपमेय है। चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता और सुंदरता देखते ही बनती है। मानस के 'भरत' का सा आदर्श चरित्र क्या संसार के किसी साहित्य में मिलेगा! आख्यान के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान कर उनका वर्णन उन ने बड़ी सुकुमारता से किया है।

गोस्वामीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उस समय में जितनी काव्यशैलियां प्रचलित थीं उन सब में उन ने रचना की और प्रत्येक में पूर्ण सफलता प्राप्त की। उनकी रचनाएं अवधी में भी हैं और ब्रज में भी। दोनों भाषाओं पर उन का समान अधिकार है। उन की भाषा सर्वत्र सरल, सुबोध, सुगठित; व्यवस्थित और व्याकरण-सम्मत है, शिथिलता का कहीं नाम नहीं।

तुलसी के काव्य में रस और अलंकारों का निर्वाह बड़ी स्वाभाविकता के साथ हुआ है। उन के अलंकार अपने उद्देश्य को चरितार्थ करनेवाले हैं। यमक, श्लेष, कूट आदि खिलवाड़ के अलंकारों में उनकी रुचि नहीं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का उन ने अधिक प्रयोग किया है। लाला भगवानदीन के शब्दों में 'गोस्वामीजी रूपकों के बादशाह थे।'

'तुलसीदास कवि थे, भक्त थे, पंडित-सुधारक थे, लोक-नायक थे और भविष्य के स्रष्टा थे। इन रूपों में उन का कोई भी रूप किसी से घट कर नहीं। यही कारण था कि उन ने सब ओर से समता (Balance) की रक्षा करते हुए एक अद्वितीय काव्य की सृष्टि की जो अब तक उत्तर-भारत का मार्गदर्शक रहा है और उस दिन भी रहेगा जिस दिन नवीन भारत का जन्म हो गया होगा।'

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज बीकानेर के महाराजा कल्याणमल के पुत्र और महाराजा रायसिंह के छोटे भाई थे। उनका जन्म संवत १६०६ में और देहांत सं० १६५७ में हुआ कहा जाता है। वे सम्राट अकबर के दरबार में रहते थे। अकबर उन्हें बहुत मानता था। साम्राज्य की कई लड़ाइयों में भी उनने भाग लिया था। उनकी वीरता से प्रसन्न होकर सम्राट ने उन्हें गागरोनगढ़ की, जो इस समय कोटा राज्य के अंतर्गत है, जागीर दी थी। उनका एक विवाह उदयपुर में तथा दूसरा जेसलमेर में हुआ था। उनकी

दूसरी पत्नी का नाम चंपादे था जो स्वयं बड़ी विदुषी और कवि थी।

पृथ्वीराज में कवित्व, भक्ति और वीरता का अपूर्व सम्मिलन हुआ था। उनकी कविता का लोहा समकालीन चारण कवियों तक ने माना; भक्त के रूप में भी उनकी ख्याति उनके जीवनकाल में ही हो गयी थी। नाभाजी ने अपने भक्तमाल में उनको सम्मान के साथ स्थान दिया।

पृथ्वीराज में स्वदेश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी थी परिस्थिति-वश उन्हें अकबर की अधीनता में रहना पड़ा पर उनका हृदय सदा देश की ओर था। महाराणा प्रताप पर उनकी असीम श्रद्धा थी। उनके वे बड़े भारी प्रशंसक थे। उन के लिये उनने बड़ी ही भाव-पूर्ण ओजस्विनी कविताएं लिखीं। जब उनने सुना कि महाराणा भी अकबर की अधीनता स्वीकार करने को तय्यार हो गये हैं। तो उनको आन्तरिक व्यथा हुई। उस समय उनने महाराणा को वह ऐतिहासिक पत्र लिखा जिसने राजस्थान की महान पराजय को विजय में बदल दिया। पृथ्वीराज सच्चे राजस्थानी कवि थे।

पृथ्वीराज के संबंध में अनेक आख्यायिकाएं तथा चमत्कारिक घटनाएं प्रसिद्ध हैं जिनका उल्लेख स्थानाभाव से यहां नहीं किया जा सकता।

पृथ्वीराज ने राजस्थानी, हिंदी और संस्कृत तीनों भाषाओं में काव्य रचना की पर वे मुख्यतया राजस्थानी के ही कवि हैं। उनकी प्रमुख रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं–

(१) क्रिसन-रुकमणी री वेलि
(२) जुगल विलास (व्रजभाषा)
(३) गंगाजी रा दूहा
(४) ठाकुरजी रा दूहा

उनके रचित डिंगल वीर गीत और नीति आदि के प्रकीर्णक दोहे बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं।

पृथ्वीराज की सबसे महत्त्वपूर्ण कृति 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' है। यह एक खंड काव्य है। इसमें ३०५ पद्यों में कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा है। यह एक खंड काव्य है। उत्तरार्ध में ऋतुओं का वर्णन है जिसमें वसंत का आलंकारिक वर्णन बहुत विस्तार से है। पूर्वार्ध कथा-प्रधान है, उत्तरार्ध वर्णन-प्रधान। वर्णन अधिकांश में रीति-भुक्त हैं पर कवि ने स्वतंत्र प्रतिभा का भी अनेक स्थानों में परिचय दिया है।

राजस्थान में यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हुआ। उस पर बीसों टीकाएं लिखी गयीं। भाषा ग्रंथों में रामचरितमानस और बिहारी-सतसई को छोड़कर शायद ही किसी ग्रंथ पर इतनी टीकाएं लिखी गयी हों। इसकी कई टीकाएं संस्कृत में भी हैं।

अनेक विद्वानों के मत में यह डिंगल का सर्व श्रेष्ठ ग्रंथ है, समकालीन चारण कवि आढा दुरसा ने उसे पाँचवाँ वेद और उन्नीसवाँ पुराण कहा—

पाचमो वेद भाखियो पीथल,
पुराणयो उगणीसमो पुराण।

राजस्थानी भाषा के सबसे बड़े पश्चिमी विद्वान डाक्टर टैसीटोरी के कथनानुसार वेलि राजस्थानी साहित्य की समृद्ध खनि

का एक उज्ज्वल रत्न' है। वह लिखता है— 'पृथ्वीराज का यह छोटा सा काव्य डिंगल साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में से एक है जो कवि-कल्पना का एक अनोखा नमूना है और जिस में, आगरे के ताज की भांति, ब्यौरे की सूक्ष्मता के साथ कल्पना की सरलता, और भावों की कोमलता के साथ आकार की निर्दोषिता, का सुन्दर सम्मिलन है।'

— ❀ —

[ख]

रीतिकाल (१७००–१९००)

(१) सामान्य परिचय

रीति से अभिप्राय काव्य-रीति का है। इस काल में जो कवि हुए उन में से अधिकांश ने काव्य-रीति का निरूपण करते हुए काव्य-रचना की अर्थात् रस, अलङ्कार आदि विविध काव्यांगों के लक्षण देकर उदाहरण रूप में कविता लिखी। इस प्रकार ये कवि कवि होने के साथ ही साथ आचार्य भी हैं।

रीतिकाल का आरम्भ केशवदास से माना जाता है। यों तो उन के पूर्व भी कृपाराम, गोप, करनेस आदि ने रसों और अलङ्कारों पर छोटी-छोटी रचनाएँ की थीं पर साहित्य पर उन का प्रभाव नहीं पड़ा। वे परिवर्त्तन की दिशा में संकेतक होने पर भी साहित्य के प्रवाह को रीति-काव्य की ओर मोड़ न सके। केशवदास संस्कृत के अच्छे पंडित और प्रसिद्धि-प्राप्त कवि थे और साथ ही एक राजा के आदरणीय गुरु थे। इस कारण वे ऐसी स्थिति में थे जो उन को प्रभावशाली बना सकती थी। साहित्य के प्रभाव को मोड़ देने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली। उन के अनुकरण पर रीति-ग्रंथों की भरमार हो चली। कवियों

में कविता लिखने की यह प्रणाली ही बना ली कि पहले संक्षेप में काव्यांग का लक्षण लिख कर उस के उदाहरण रूप में कविता लिखना। इस प्रथा ने धीरे धीरे इतना जोर पकड़ा कि बिना रीति-ग्रंथ लिखे कवि-कर्म पूरा समझा ही नहीं जाने लगा।

केशव ने काव्यांगों के निरूपण में काव्यादर्श-कार दंडी, कविकल्पलतावृत्ति-कार अमरचन्द्र और अलङ्कारशेखर-कार केशवमिश्र का अनुसरण किया। चन्द्रालोक-कार जयदेव और कुवलयानन्द-कार अप्पय्यदीक्षित का मार्ग अपेक्षाकृत सरल था। चिंतामणि और जसवंतसिंह ने अपने रीति-ग्रंथ इन्हीं का अनुसरण कर के लिखे। पिछले रीति-कवियों ने भी इसी मार्ग को अपनाया। बात यह थी कि रीतिकाल के कवियों में एकाध अपवाद को छोड़ कर बाकी को काव्य-रीति-निरूपण से कोई रुचि न थी। वे रीति-निरूपक नहीं, कवि थे। उन का उद्देश्य रीति-निरूपण करना नहीं; कविता करना था। रीति-निरूपण तो वे केवल परम्परा-पालन के निमित्त करते थे। इस कारण उन ने अपेक्षाकृत सरल मार्ग को ही ग्रहण किया। एक दोहे में संक्षेप से लक्षण कहा और छुट्टी हुई।

स्पष्ट है कि परम्परा-पालन के अर्थ रीति-निरूपण करने वाले ये कवि वास्तव में आचार्य-कोटि में नहीं आ सकते। उन में आचार्यत्व के गुणों का अभाव है। आचार्यत्व के लिए आवश्यक सूक्ष्म पर्यालोचन शक्ति का उन में अभाव दीख पड़ता है।

उन का काव्यांगों का विवेचन अधिकांश में अपूर्ण और

अस्पष्ट है। उन के दिये हुए लक्षण अनेक स्थानों में अशुद्ध हैं। जिन संस्कृत ग्रंथों का उन ने अनुसरण किया है उन का भाव ठीक से समझने में भी असमर्थ रहे हैं।

संस्कृत में कवि और आचार्य सदा पृथक् व्यक्ति रहे पर हिंदी में दोनों का एकीकरण हो गया जिस के फलस्वरूप हिंदी में साहित्य-विवेचना का सम्यक् विकाश नहीं हो पाया। काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा उन का खंडन-मंडन, नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन, नयी नयी उद्भावनाएँ यह कुछ भी नहीं हुआ।

रीति-कालीन कवि आचार्य चाहे न हों पर कवि अवश्य थे। उदाहरणों के रूप में उन ने जो रचनाएँ की हैं वे बड़ी ही भावपूर्ण हुई हैं। रीति काल में मुक्तक काव्य अपने सौन्दर्य की पूर्ण सीमा को पहुँचा।

रीति-काल शृंगार-काल है। इस में शृंगारी कविता की प्रधानता रही। यह शृंगार कहीं-कहीं तो अश्लीलता की कोटि को पहुँच गया है। इस काल के अधिकांश कवियों ने राज-दरबारों और रईसों के आश्रय में रह कर कविता की। देश में शांति रहने से ये राजा-रईस विलासिता की ओर झुक चले और इस का प्रभाव उन के आश्रित कवियों पर भी पड़े बिना नहीं रह सका। केशव ने शृंगार को ही एक रस मान कर अन्य रसों को उस के अंतर्भूत कर दिया। अन्यान्य कवियों ने भी दूसरे रसों का वर्णन करने में बेगार सी टाली है। नायिकाभेद, नखशिख, प्रथाबद्ध ऋतुवर्णन आदि की प्रधानता रही। प्राकृत की गाहा-

सतसई और संस्कृत के अमरु-शतक के अनुसरण पर कई कवियों ने सतसइयों तथा हजारों की रचना भी की। बिहारी की बिहारी सतसई, मतिराम की मतिराम सतसई, रामसहायदास की राम-सतसई (जिसे शृंगार-सतसई भी कहते हैं) और रसनिधि का रतनहजारा इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। इन कवियों ने यद्यपि काव्यांगों के लक्षण नहीं लिखे फिर भी उन के छंद विविध काव्यांगों को ध्यान में रख कर ही लिखे गये हैं।

इस काल के प्रमुख शृंगारी कवियों और आचार्यों में कुछ के नाम इस प्रकार हैं— (१) केशवदास। (२) चिंतामणि त्रिपाठी— ये भूषण कवि के बड़े भाई बताये जाते हैं। (३) मतिराम— ये भी भूषण के भाई थे और मुख्यतया बूँदी के राजाश्रय में रहे। (४) देव— इन के रीति-निरूपण में अन्य हिन्दी कवियों की अपेक्षा कई नई बातें मिलती हैं। (५) रसलीन। (६) प्रतापसिंह। (७) पदमाकर — रीति-काल के अंतिम सब से बड़े कवि हैं। ये लोग मुख्यतया कवि हैं, आचार्य नहीं।

(१) महाराज जसवंतसिंह (जोधपुर), (२) श्रीपति, (३) भिखारीदास और (४) रसिकगोविन्द— ये आचार्य की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। जसवंतसिंह का भाषाभूषण ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुआ। भिखारीदास के काव्यनिर्णय, शृंगारनिर्णय और छन्दार्णव पिंगल ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की। रसिकगोविंद का रसिकगोविंदानन्दघन रीति-ग्रंथों में अपेक्षाकृत विस्तृत और पूर्ण है।

इस काल में कुछ शृंगारी कवि ऐसे भी हुए जिन ने

रीति-निरूपण नहीं किया और जिन की रचनाएँ रीति को ध्यान में रख कर नहीं लिखी गयीं। उन की कविता प्रेम-संबंधी प्रकीर्णक पद्यों के रूप में है और भावपूर्ण है। ऐसे कवियों में घनानद, आलम, ठाकुर और बोधा प्रमुख हैं।

भूषण मध्ययुग में वीर रस के सब से बड़े कवि हुए। उन की कविता में वही रस का ओज मिलता है जो राजस्थान के चारण कवियों की कविता में पाया जाता है। पर भूषण केवल वीर रस के ही कवि नहीं, वे हिन्दू जाति के भी कवि हैं। महाराज शिवाजी और छत्रसाल जैसे हिन्दू जाति के उन्नायक नरेशों के आश्रय में रह कर उन ने कविता की। भूषण अपने समय के प्रमुख जातीय कवि हैं।

इस काल के वीर रस के अन्य कवियों में लाल और सूदन उल्लेखनीय हैं। लाल ने छत्रप्रकाश में महाराज छत्रसाल की जीवनी लिखी और सूदन ने भरतपुर के महाराज सूरजमल की वीरता का वर्णन अपने सुजानविनोद में किया।

इस काल में कई एक प्रबंधकाव्य भी लिखे गये पर वे अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सके। लाल का छत्रप्रकाश भी प्रबंध काव्य है। अन्य रचनाओं में जोधराज का हम्मीर-रासो, ब्रजवासीदास का ब्रजविलास और मधुसूदन का रामाश्वमेध अच्छी रचनाएँ हैं। गुमान ने नैषधचरित का और सबलसिंह ने महाभारत का अनुवाद किया। गोकुलनाथ ने गोपीनाथ और मणिराम के सहयोग से महाभारत का जो विस्तृत अनुवाद किया वह अधिक अच्छा हुआ।

वृन्द, बेताल, बाघ और गिरधर कविराय इस काल में प्रमुख सूक्ति-कार या नीति-कवि हुए। भक्ति-काव्य के लेखकों में चाचा हित वृन्दावनदास और नागरीदास के नाम उल्लेखनीय हैं।

कवित्त और सवैया तथा दोहा इस काल में कवियों के सब से प्रिय छन्द रहे। अधिकांश कविता इन्हीं में लिखी गयी—शृंगार रस की और वीर रस की भी। प्रबंधकाव्य अधिकतर दोहा-चौपाई में लिखे गये, नीति-रचनाएँ दोहों में हुई और भक्ति काव्य पदों में।

इस काल में साहित्य की मुख्य भाषा ब्रजभाषा रही। अवधी में भी कुछ रचनाएँ हुईं। धीरे-धीरे कवि लोग दोनों का मिश्रण भी करने लगे। मधुर भाषा लिखने वाले कवियों में घनानन्द, मतिराम, प्रतापसिंह और बिहारी के नाम गिनाये जा सकते हैं। पदमाकर की भाषा अधिक अनुप्रासमयी और देव की भाषा अधिक यमक-मयी है।

सेनापति

सेनापति कान्यकुब्ज ब्राह्मण और अनूपशहर (जिला बुलंदशहर) के निवासी थे। उन का जन्मकाल संवत् १६४६ के आसपास माना जाता है। उन की मृत्युतिथि का पता नहीं चलता पर उन का काव्यरत्नाकर संवत् १७०६ में समाप्त हुआ था अतः उस समय तक उन का विद्यमान होना निश्चित है। कवित्त-रत्नाकर के एक छन्द से जान पड़ता है कि उन का

संबंध मुसलमानी दरबारों से भी था पर अन्त में उन को मुसलमानों की दासता से विरक्ति हो गयी थी। शिवसिंहसरोज के अनुसार अपने अन्तिम समय में उन ने वृन्दावन में क्षेत्र-संन्यास ले लिया था। सेनापति को श्रीराम का इष्ट था और उन ने रामभक्ति-संबंधी सुन्दर कविता भी लिखी है।

हिंदी के कवियों में सेनापति का बहुत ऊंचा स्थान है। वे बड़े ही सहृदय कवि थे। उन की कविता प्रवाहपूर्ण, आजस्विनी, प्रभावशालिनी और प्रौढ़ है। उन के लिखे दो ग्रंथ बताये जाते हैं— एक कवित्तरत्नाकर और दूसरा काव्य-कल्पद्रुम। इन में पिछला ग्रंथ इस समय उपलब्ध नहीं है। कवित्तरत्नाकर में सब मिला कर कोई ३८४ छंद हैं जिन में कुछ को छोड़ कर बाकी सब मनहरण कवित्त हैं। अन्य छन्दों में छप्पय, कुंडलियां और दोहे हैं। यह ग्रंथ पांच तरंगों में विभक्त है। पहली तरङ्ग में मङ्गलाचरण, कवि परिचय आदि के पीछे श्लेष-रचना के छन्द हैं। प्रत्येक छन्द का अर्थ दो पद्यों में लगता है। दूसरी तरङ्ग में शृंगार की कविता है। तीसरी तरङ्ग में ऋतुवर्णन है जिस के लिये सेनापति की सब से अधिक प्रसिद्धि है। चौथी तरङ्ग में राम-कथा के कुछ प्रसंगों पर मुक्तक छन्द हैं। पांचवीं तरङ्ग में भक्ति और चित्रकाव्य सम्बन्धी रचना है। भक्तिकाव्य में श्रीराम, शिव और गङ्गा के विनय के छन्द हैं। चित्रकाव्य में बहिर्लापिका, अमात्रिक, एकाक्षरी, द्व्यक्षरी, व्यपेत-समुद्र-यमक आदि के उदाहरण आये हैं।

इस प्रकार सेनापति ने शृंगार, वीर और भक्ति रसों की

कविता की है और सब में अच्छी सफलता प्राप्त की है। उन के वीर रस के छप्पय चन्द बरदायी की याद दिला देते हैं। उन की भाषा प्रवाहमयी और मधुर है। भाषा पर इस कवि का अपूर्व अधिकार है। अनुप्रास और यमक की भरमार होने पर भी उन की भाषा में कहीं भी अस्वाभाविकता या कृत्रिमता नहीं आने पायी है। यमकों का जैसा प्रचुर और साथ ही सुन्दर और स्वाभाविक प्रयोग सेनापति ने किया है वैसा हिंदी का और कोई कवि नहीं कर सका है। पीछे के कवियों में देव ने उन का अनु-करण करने का प्रयत्न किया पर उन्हें सफलता नहीं मिली। देव की भाषा में न तो वह प्रवाह है और न वह अर्थ की सुबोधता ही। देव की भांति सेनापति ने शब्दों को तोड़-मरोड़ कर विकृत भी नहीं किया है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सेनापति ने अधिकांश कवित्त छन्द में ही रचना की है। इस के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि कविता की चोरी हो जाने के भय से ही उन ने ऐसा किया था। सवैया आदि छन्दों में उन का नाम सुगमतापूर्वक नहीं आ सकता था इसलिए उन ने कवित्तों में रचना की।

सेनापति के काव्य का सब से सुन्दर अंश प्रकृति वर्णन है। हिंदी के अन्यान्य रीतिकालीन कवियों ने भी प्रकृति वर्णन किया है पर जैसा स्वाभाविक, भावपूर्ण और प्रभावोत्पादक वर्णन सेनापति का है वैसा किसी दूसरे का नहीं। उन कवियों के वर्णन मुख्यतया उद्दीपन विभाव के रूप में हैं। उन ने कवियों की एक प्रथा का पालन कर किसी प्रकार पिंडे छुड़ाया

है। प्रकृति के प्रति हृदय का अनुराग उन में दृष्टिगोचर नहीं होता; प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण उन ने किया हो ऐसा नहीं जान पड़ता। सेनापति में हम कवि का प्रकृति के प्रति सच्चा अनुराग पाते हैं। कवि का हृदय प्राकृतिक दृश्यों में रमा हुआ दिखाई पड़ता है। विभिन्न ऋतुओं के जो सुन्दर चित्र कवि ने खड़े किये हैं वे उस के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण को सूचित करते हैं। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा ग्रीष्म का चित्रण अधिक सजीव और मर्मस्पर्शी हुआ है।

सेनापति स्वाभिमानी प्रकृति के कवि थे। दूसरा क भावों को अपनाने का प्रयत्न उन ने कहीं नहीं किया है। इस स्वाभिमानी प्रकृति की झलक उन के भक्ति-काव्य में भी मिलती है। भाव-विभोर होकर वे भगवान से भी कहे जाते हैं—

आपने करम करि हौं ही निबहौंगो, तौ 'ब
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के ?

बिहारी

बिहारी माथुर चौबे ब्राह्मण थे। उन का जन्म गवालियर में संवत् १६५२ में हुआ बताया जाता है। उन के पिता का नाम केशो-केशोराय था जो स्वयं अच्छे कवि थे। इन के कुछ छन्द खोज में मिले हैं। बिहारी के जन्म के सात-आठ वर्ष बाद उन के पिता गवालियर छोड़ कर ओड़छे चले आये और ओड़छे के पास गुढ़ौ ग्राम के निवासी महात्मा नरहरिदास के शिष्य हो गये। बिहारी ने वहीं रह कर शिक्षा प्राप्त की। कहते

हैं कि वहां उन ने महाकवि केशवदास से भी साहित्य ग्रंथों का अध्ययन किया था। संवत् १६६४ के लगभग पिता के साथ बिहारी वृन्दावन चले आये। उन का विवाह मथुरा में हुआ। उन की स्त्री भी अच्छी कवि थी ऐसी प्रसिद्धि है। सं० १६७५ के लगभग जब शाहजहां वृन्दावन गया तो बिहारी उस से मिले और उस ने उन्हें आगरे बुलाया। कहते हैं कि कविवर रहीम से भी बिहारी की भेंट हुई थी और रहीम ने प्रसन्न हो कर उन्हें बहुत कुछ पुरस्कार भी दिया था।

सं० १६७७ में अपने पुत्र के जन्मोत्सव पर शाहजहां ने बिहारी का अच्छा स्वागत किया और उस उत्सव में सम्मिलित हुए राजाओं ने उन की वार्षिक वृत्ति बांध दी जिसे लेने के लिए वे प्रतिवर्ष उन के दरबारों में जाया करते थे। इन में आमेर (वर्त्तमान जयपुर-राज्य) के राजा महाराजा जयसिंह (बड़े) भी थे। एक बार जब वे आमेर गये तो पता चला कि महाराज एक नयी रानी ब्याह लाये हैं और उस के प्रेम में इतने मग्न हो गये हैं कि सब राज-काज भुला कर रात दिन उसी के महल में रहते हैं। महाराज की बड़ी रानी श्रीचौहानजी तथा मन्त्रीगण इस से बहुत चिंतित थे। बिहारी ने महाराज के पास पहुँचने का बहुत उद्योग किया पर सफल न हुए। तब उन ने नीचे लिखा दोहा महाराज के पास भिजवाया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल
अली कली ही सौं बिंध्यो, आगे कौन हवाल॥

दोहे का तत्काल असर हुआ और महाराज का विलास

मद उतर गया। चौहानी रानी इस से बहुत प्रसन्न हुई और उन ने बिहारी से आमेर में ही रहने का आग्रह किया और काली पहाड़ी नाम का गांव उन्हें पुरस्कार में दिया। राजा-रानी से सम्मानित होकर बिहारी आमेर में रहने लगे। कुछ समय पश्चात् रानी के गर्भ से युवराज रामसिंह का जन्म हुआ। उन्हें पढ़ाने के लिए बिहारी नियुक्त किये गये। रानी ने बिहारी का चित्र भी बनवाया था।

महाराज की आज्ञा से बिहारी ने सतसई लिखना आरम्भ किया। प्रत्येक दोहे पर महाराज की ओर से उन्हें एक अशर्फी पुरस्कार में मिलती थी। इस ग्रंथ की समाप्ति सं० १७०४ में हुई।

बिहारी का देहावसान सं० १७२१ में हुआ।

बिहारी की केवल एक ही रचना बिहारी-सतसई मिलती है। इस में लगभग ७०० दोहों का संग्रह है जिन में से अधिकांश शृंगार रस के हैं। कुछ दोहे नीति और भक्ति के भी हैं। सतसई संस्कृत के सप्तशती शब्द का हिन्दी रूप है। जिस ग्रंथ में ७०० पद्यों का संग्रह हो उसे सतसई कहते हैं। मुक्तक पद्यों के ऐसे संग्रह लिखने की परंपरा बहुत प्राचीन है। इस प्रकार की सब से पहली रचना हाल कृत गाहा सतसई (गाथा सप्तशती) है जो प्राकृत भाषा में है। संस्कृत में ऐसी रचना गोवर्द्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती है। सौ-सौ पद्यों के संग्रह भी लिखे जाते थे। ऐसे संग्रहों में संस्कृत का अमरुशतक बहुत प्रसिद्ध है। ये सब रचनाएँ शृंगार-संबंधी हैं। हिन्दी में तुलसीदास

की तुलसी-सतसई बिहारी-सतसई से पहले लिखी गयी थी पर वह शृंगार-रसात्मक नहीं है। कहते हैं कि रहीम ने भी सतसई लिखी थी पर अब पूरे ७०० दोहे नहीं मिलते।

सतसई की रचना किसी क्रम से नहीं हुई थी, उस में दोहों का कोई निश्चित क्रम न था। इसलिए पीछे कई लोगों ने विषयानुसार सतसई के कई क्रम बांधे। नीचे लिखे तीन क्रम विशेष प्रसिद्ध हुए—

(१) पुरुषोत्तमी क्रम जो तीनों में पुराना हो और जिस के अनुसार हरिप्रकाशिका और बिहारीबोधिनी टीकाएँ लिखी गयी हैं, (२) अनवरचंद्रिका का क्रम जिस पर अनवरचंद्रिका टीका है और (३) आजमशाही क्रम जो सब से अधिक प्रसिद्ध है और जिस पर लालचंद्रिका टीका और संजीवन भाष्य लिखे गये हैं। इन में अनवरचंद्रिका का क्रम सब से अच्छा है। रत्नाकर की बिहारीरत्नाकर टीका प्राचीन क्रम के अनुसार है जिस में बिहारी ने सतसई की रचना की थी।

बिहारी सतसई का जनता में बहुत प्रचार हुआ। रीतिकाल के और किसी कवि को ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इस ग्रंथ पर टीकाएँ भी पचासों बनीं और अब तक बनती ही जाती हैं। ये टीकाएँ गद्य में ही नहीं पद्य में भी लिखी गयीं। संस्कृत और फारसी तक में उन की रचना हुई। संस्कृत और उर्दू में पद्यानुवाद भी किये गये। परमानंद कवि ने दोहे का अनुवाद संस्कृत में भी दोहा छन्द में किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि अनेक कवियों ने सतसई के दोहों पर कुंडलियां और

सवैया लगाये। इस प्रकार का आदर भाषा के किसी ग्रंथ को कदाचित ही मिला हो। बिहारी-सतसई की आधुनिक टीकाओं में लाला भगवानदीन की बिहारीबोधिनी, पद्मसिंह शर्मा का संजीवनभाष्य, तथा जगन्नाथदास रत्नाकर का बिहारी-रत्नाकर सब से अधिक प्रसिद्ध है।

रीतिकाल के अन्यान्य कवियों की भांति बिहारी ने यद्यपि सतसई की रचना लक्षणग्रंथ के रूप में नहीं की, उस में विविध काव्यांगों के लक्षणों का निरूपण नहीं किया, फिर भी उस में सब काव्यांगों का समावेश हो गया है। टीकाकारों ने काव्यांगों के अनुसार क्रम बांध कर टीकाएँ की हैं और उन में इन काव्यांगों का विवेचन किया है।

बिहारी-सतसई काव्य के मुक्तक भेद के अन्तर्गत आती है। मुक्तक काव्य में प्रकीर्णक अर्थात् परस्पर-असंबद्ध पद्य होते हैं। प्रत्येक पद्य एक स्वतन्त्र प्रबंध होता है अर्थात् उस में एक पूर्ण चित्र अंकित किया हुआ होता है। श्रीरामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिस में कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। उस में रस के ऐसे स्निग्ध छींटे पड़ते हैं जिन से हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिये खिल उठती है। यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" बिहारी को ऐसी मुक्तक-रचना में अभूतपूर्व सफलता मिली है। मुक्तक-रचना बिहारी में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँची है। छोटे से

दोहे में कवि ने बहुत सा भाव भर कर गागर में सागर भर दिया है। सतसई के दोहों के विषय में यह उक्ति बहुत अधिक प्रसिद्ध है—

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं घाव करैं गम्भीर॥

सतसई में सौन्दर्य और प्रेम के छोटे-छोटे सुन्दर चित्रों का संग्रह है। अनुभावों की जैसी सुन्दर योजना सतसई के दोहों में है वैसी अन्यत्र नहीं मिलेगी। विविध संचारी भावों के अच्छे से अच्छे उदाहरण सतसई में मिलेंगे। रस की समस्त सामग्री के साथ-साथ नायिका के सौन्दर्य, सौकुमार्य, कांति-विरह-ताप; विरह-जन्य, कृशता आदि का वर्णन भी कवि ने बहुत मनोहर किया है। कहीं-कहीं वह अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण और ऊहात्मक होकर खिलवाड़ की सीमा को भी पहुँच गया है। उर्दू के कवियों की भांति बिहारी ने कहीं-कहीं खूब दूर की उडान भी ली है। ऐसे दोहे उर्दू-पद्यों की भांति सभा-समाजों के लिये बहुत उपयुक्त है।

बिहारी के नीति और भक्ति संबंधी दोहे भी बड़े सुन्दर और मार्मिक बने हैं। प्रकृतिवर्णन के दोहे भी बिहारी ने कहे हैं और बड़े भाव-पूर्ण कहे हैं।

बिहारी की भाषा चलती हुई फिर भी साहित्यिक है। वह सर्वत्र व्यवस्थित, व्याकरण-सम्मत, सानुप्रास और माधुर्य-पूर्ण

है। ‡ विभिन्न अर्थालङ्कारों का भी बिहारी की कविता में अच्छा समावेश हुआ है।

सूर को ध्यान में रखते हुए बिहारी को हम शृंगार रस का सर्वश्रेष्ठ कवि तो नहीं कह सकते पर रीति-कालीन कवियों में उन का प्रमुख स्थान है इस को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

---

‡ मिश्रबन्धुओं ने बिहारी पर शब्दों को बहुत अधिक तोड़ने-मरोड़ने का दोष लगाया है और उन की भाषा को सदोष बतलाया है पर यह ठीक नहीं। जो उदाहरण उन ने दिये हैं उन में एक भी शब्द या प्रयोग ऐसा नहीं जो सूर जैसे पुराने कवियों में अथवा मतिराम, देव, पद्माकर आदि पिछले कवियों में न मिलता हो। इस प्रकार बिहारी ने साहित्य-प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया है। उन के कारण उन की भाषा को सदोष नहीं कहा जा सकता।

वल्लरी

माध्यमिक हिंदी-काव्य

१ सूरदास

(१) विनय

(१)

जो सुख होत गोपालहिं गाये।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाये॥
दिये लेत नहिं चारि पदारथ चरन-कमल चित लाये।
तीनि लोक तृन सम करि लेखत नंदनंदन उर आये।
बंसीबट बृंदाबन जमुना तजि बैकुंठ न जावै
सूरदास, हरि कौ सुमिरन करि बहुरि न भव-जल आवै

(२)

प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न बिचारो।
कीजै लाज सरन आये की, रबि–सुत–त्रास निवारो।
जोग-जग्य-जप-तप नहिं कीन्हो, बेद बिमल नहिं भाख्यो।
अति रस-लुब्ध,स्वान जूठनि ज्यों, अनत नहीं चित राख्यो॥
जिहिं जिहिं जोनि फिर्‌यौ संकट-बस,तिहिं-तिहिं यहै कमायो।
काम-क्रोध-मद-लोभ-ग्रसित ह्वै, बिषय परम बिष खायो॥
जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि में, लै सुरतरु बिधि हाथ।
मम कृत दोस लिखै बसुधा भरि, तऊ नहीं मिति, नाथ॥

तुमहिं समान और नहिं दूजो, काहि भजौं हौं दीन।
कामी, कुटिल, कुचील, कुदरसन, अपराधी मति-हीन॥
तुम तो अखिल, अनंत, दयानिधि, अबिनासी, सुख-रासि।
भजन-प्रताप नाहिं मैं जान्यो, परयो मोह की फाँसि॥
तुम सरबग्य, सबै बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।
मोह-समुद्र सूर बूड़त है, लीजै भुजा पसारि॥

(३)

जो जग और बियौ कोउ पाऊँ।

तौ हौं बिनती बार-बार करि, कत प्रभु तुमहिं सुनाऊँ?
सिव-बिरंचि, सुर-असुर, नाग-मुनि, सु तौ जाँचि जन आयो।
भूल्यो, भ्रम्यो, तृषातुर मृग लौं, काहू स्रम न गँवायो॥
अपथ सकल चलि, चाहि चहूँदिसि, भ्रम उघटत मतिमंद।
थकित होत रथ चक्र-हीन ज्यों, निरखि करम-गुन-फंद॥
पौरुष-रहित, अजित इंद्रिनि बस, ज्यों गज पंक परयो।
बिषयासक्त, नटी के कपि ज्यों, जोइ-जोइ कह्यो, कर्‌यो॥
भव-अगाध-जल-मगन महा सठ तजि पद-कूल रह्यो।
गिरा-रहित, बृक-ग्रसित अजा लौं, अंतक आनि गह्यो॥
अपने ही अंखियानि-दोष तें, रबिहिं उलूक न मानत।
अतिसय सुकृत-रहित, अघ-ब्याकुल, बृथा स्रमित रज छानत॥

सुनु त्रयताप - हरन, करुनामय, संतत दीनदयाल।
सूर, कुटिल राखौ सरनाई इहिं ब्याकुल कलिकाल॥

(४)

मेरी तौ गति पति तुम, अनतहि दुख पाऊँ।
हौं कहाइ तिहारो अब, कौन को कहाऊँ?
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा जा दुहाऊँ?
हय-गयंद उतरि कहा गरदभ चढ़ि धाऊँ?
कंचन मनि खोलि डारि काँच गर बंधाऊँ?
कुंकम को तिलक मेटि काजर मुख लाऊँ?
पाटंबर अंबर तजि गूदर पहिराऊँ?
अंब को फल छांड़ि कहा सेंवर को धाऊँ?
सागर की लहर छांड़ि खार कत अन्हाऊँ?
सूर, कूर आँधरो मैं द्वार पर्‌यो गाऊँ?

(५)

अबिगत-गति जानी न परै।
मन-बच-करम अगाध अगोचर, किहि बिधि बुधि संचरै?
अति प्रचंड पौरुष-बल पाये केहरि भूख मरै।
अनायास बिनु उद्यम कीन्हें अजगर उदर भरै॥
रीते भरै, भरे पुनि ढारै, चाहै फेरि भरै।
कबहुँक तृन बूड़ै पानी में, कबहुँक सिला तरै॥

बागर त सागर करि डारै, चहुं दिसि नीर भरै।
पाहन बीच कमल बिगसावै, जल में अगिनि जरै॥
राजा रंक, रंक तें राजा, लै सिर छत्र धरै।
सूर, पतित तरि जाइ छिनक में, जौ प्रभु नेकु ढरै॥

(६)

जा पर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ, जिहिं पर कृपा करै॥
राजा कौन बड़ो रावन ते, गरब-हिं-गरब गरै।
रांकव कौन सुदामा हू ते, आपु समान करै॥
रूपव कौन अधिक सीता ते, जनम बियोग भरै।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा ते, हरि पति पाइ तरै॥
जोगी कौन बड़ो संकर ते, ता को काम छरै।
कौन बिरक्त अधिक नारद सों, निसि-दिन भ्रमत फिरै॥
अधम सु कौन अजामिल हू ते, जम तहँ जात डरै।
सूरदास, भगवंत-भजन बिनु फिरि-फिरि जठर जरै॥

(७)

मन रे माधव सौं करि प्रीति।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू छाँड़ि सबै बिपरीति॥
भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि रस करै, कमल बँधावै आप॥

सुनु त्रयताप - हरन, करुनामय, संतत दीनदयाल।
सूर, कुटिल राखौ सरनाई इहिं ब्याकुल कलिकाल॥

(४)

मेरी तौ गति पति तुम, अनतहि दुख पाऊँ।
हौं कहाइ तिहारो अब, कौन को कहाऊँ?
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा जा दुहाऊँ?
हय-गयंद उतरि कहा गरदभ चढ़ि धाऊँ?
कंचन मनि खोलि डारि काँच गर बंधाऊँ?
कुंकम को तिलक मेटि काजर मुख लाऊँ?
पाटंबर अंबर तजि गूदर पहिराऊँ?
आंब को फल छांड़ि कहा सेंवर को धाऊँ?
सागर की लहर छांड़ि खार कत अन्हाऊँ?
सूर, कूर आँधरो मैं द्वार पर्‌यो गाऊँ?

(५)

अबिगत-गति जानी न परै।
मन-बच-करम अगाध अगोचर, किहि बिधि बुधि संचरै?
अति प्रचंड पौरुष-बल पाये केहरि भूख मरै।
अनायास बिनु उद्यम कीन्हें अजगर उदर भरै॥
रीते भरै, भरे पुनि ढारै, चाहै फेरि भरै।
कबहुँक तृन बूड़ै पानी में, कबहुँक सिला तरै॥

सागर तें सागर करि डारै, चहुं दिसि नीर भरै।
पाहन बीच कमल बिगसावै, जल में अगिनि जरै॥
राजा रंक, रंक तें राजा, लै सिर छत्र धरै।
सूर, पतित तरि जाइ छिनक में, जौ प्रभु नेकु ढरै॥

(६)

जा पर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ, जिहिं पर कृपा करै॥
राजा कौन बड़ो रावन ते, गरब-हिं-गरब गरै।
रांकव कौन सुदामा हू ते, आपु समान करै॥
रूपव कौन अधिक सीता ते, जनम बियोग भरै।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा ते, हरि पति पाइ तरै॥
जोगी कौन बड़ो संकर ते, ता को काम छरै।
कौन बिरक्त अधिक नारद सों, निसि-दिन भ्रमत फिरै॥
अधम सु कौन अजामिल हू ते, जम तहँ जात डरै।
सूरदास, भगवंत-भजन बिनु फिरि-फिरि जठर जरै॥

(७)

मन रे माधव सौं करि प्रीति।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू छाँड़ि सबै बिपरीति॥
भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि रस करै, कमल बँधावै आप॥

सुनि परमिति पिय-प्रेम की, चातक चितवन पारि।
घन-आसा सब दुख सहै, अनत न जाँचै बारि॥
देखो करनी कमल की, कीन्हो रवि सों हेत।
प्रान तज्यो, प्रेम न तज्यो, सूख्यो सलिल समेत॥
दीपक प्रेम न जानई, पावक परत पतङ्ग।
तनु तौ तिहिं ज्वाला जर्‌यौ, चित न भयौ रस-भङ्ग॥
मन बियोग न सहि सकैं, नीर न पूछ बात।
देखि जु तू ता की गतिहिं, रति न घटै तन जात॥
परनि परेवा प्रेम की चित लै चढ़त अकास।
तहँ चढ़ि तीय जो देखई, भू पर परत निसास॥
सुमिरि सनेह कुरंग को, स्रवननि राच्यो राग।
धरि न सकत पग पछमनो, सर सनमुख उर लाग॥
देखि जरनि, जड़, नारि की, जरति प्रेत के संग।
चिता न चित फीको भयो, रची जु पिय के रंग॥
लोक-बेद बरजत सबै, देखत नैननि त्रास।
चोर न चित चोरी तजै, सरबस सहै बिनास॥
तैं जु रतन पायो भलो, जान्यो साधि न साज।
प्रेम-कथा अनुदिन सुनै, तऊ न उपजै लाज॥
सदा सँघाती आपनो, जिय को जीवन प्रान।
सु तैं बिसार्‌यो सहज हीं हरि ईस्वर भगवान॥

जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहु आँक न हरि भजे, रे सठ, सूर, गँवार॥

(८)

जौ लौं मन-कामना न छूटै।
तौ कहा जोग-जग्य-ब्रत कीन्हे, बिनु कन तुस को कूटै॥
कहा सनान किये तीरथ के, अंग भस्म, जट-जूटै।
कहा पुरान जु पढ़े अठारह, उरध धूम के घूटैं॥
जग-सोभा की सकल बड़ाई, इन तें कछू न खूटै।
करनी और,कहनि कछु और, मन दस हूं दिसि टूटै॥
काम क्रोध मद लोभ सत्रु हैं, जो इतननि सों छूटै।
सूरदास, तब ही तम नासै, ग्यान-अगिनि-झर फूटै॥

(९)

अपुनपौ आपुन ही बिसरयो।
जैसे स्वान काँच-मन्दिर में, भ्रमि-भ्रमि भूसि मरयो॥
हरि-सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृण सूँघि फिरयो।
ज्यों सपने में रंक भूप भयो, तस कर अरि पकरयो॥
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखिकै, आपुन कूप पर्‌यो।
जैसे गज लखि फटिक-सिला में दसननि जाइ अरयो।
मरकट मूंठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर-घर द्वार फिरयो।
सूरदास, नलिनी को सुवटा, कहि, कौनै पकरयो॥

(१०)

अपुनपौ आपुन ही में पायो।

सबद-हि-सबद भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो॥
ज्यों कुरंग-नाभी कसतूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिरि चितयो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही में चिन्हायो॥
राजकुमारि कंठ मनि-भूखन, भ्रम भयो—कहूँ गँवायो।
दियो बताइ और सखियन, तब तन को ताप नसायो॥
सपने मांहि नारि को भ्रम भयो, बालक कहूँ हिरायो।
जागि लख्यो ज्यों-को-त्यों ही है, ना कहुँ गयो न आयो॥
सूरदास, समुझै की यह गति, मन-ही-मन मुसकायो।
कहि न जाइ या सुखकी महिमा, ज्यों गूंगे गुर खायो॥

(११)

ऊधो, चलो बिदुर के जइयै।

दुरजोधन के कौन काज जहं, आदर-भाव न पइयै॥
गुरुमुख नहीं, बड़े अभिमानी, का पै सेव करइयै?
टूटी छानि, मेघ जल बरसै, टूटो पलँग बिछइयै॥
चरन धोइ चरनोदक लीन्हो, तिया कहै—प्रभु, अइयै।
सकुचत फिरत जो बदन छिपाये, भोजन कहा मँगइयै?
तुम तौ तीन लोक के ठाकुर, तुम तें कहा दुरइयै?
हम तौ प्रेम-प्रीति के गाहक, भाजी-साक छकइयै॥

हँसि-हँसि खात, कहत मुख महिमा, प्रेम-प्रीति अधिकइयै।
सूरदास, प्रभु भगतनि के बस, भगतनि प्रेम बढ़इयै॥

(१२)

हम तें बिदुर कहा है नीको ?

जा के रुचि सों भोजन कीन्हो, कहियत सुत दासी को॥
द्वै बिधि भोजन कीजे, राजा, बिपति परे, कै प्रीति।
तेरे प्रीति न मोहिं आपदा, यहै बड़ी बिपरीति॥
ऊँचे मंदिर कौन काम के, कनक-कलस जो चढ़ाये।
भगत-भवन मैं हौं जु बसत हौं, जद्यपि तृन करि छाये॥
अन्तरजामी नाउँ हमारो, हौं अंतर की जानौं।
तदपि, सूर, मैं भगतबछल हौं, भगतनि हाथ बिकानो॥

(१३)

ठाढ़ी कृस्न-कृस्न यों बोलै।

जैसे कोऊ बिपति परे तें दूरि धर्‌यो धन खोलै॥
पकर्‌यो चीर दुष्ट दुसासन, बिलख बदन भई डोलै।
जैसे राहु नीच ढिग आये चन्द्र-किरन झकझोलै॥
जा के मीत नंदनंदन से, ढकि लई पीत पटोलै।
सूरदास, ता को डर का को, हरि गिरिधर के ओलै॥

(२) बालकृष्ण

(१)

आजु तौ बधाई बाजै मंदिर महर के।
फूले फिरैं गोपी-ग्वाल ठहर-ठहर के॥

फूलि फिरैं धेनु धाम, फूलीं गोपी अँग-अँग,
फूले-फरे तरुवर अनंद लहर के।
फूले बंदीजन द्वारे, फूले-फूले बंदवारे,
फूले जहाँ जोइ-सोइ गोकुल सहर के॥

फूले फिरैं जादौ-कुल अनंद समूल मूल,
अंकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के।
उमँगे जमुन-जल, प्रफुलित कुंज-पुंज,
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के॥

नृत्यत मदन फूले, फूली रति अँग-अँग,
मन के मनोज फूले हरि-हलधर के।
फूले द्विज-संत-बेद, मिटि गयो कंस-खेद,
गावत बधाई, सूर, भीतर-बाहर के॥

(२)

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी।
जो मन में अभिलास करत ही, सो दखति नंद-घरनी॥

रुनुक-झुनुक पग नूपुर बाजै, धुनि अति ही मनहरनी।
बैठि जात, पुनि उठत तुरत ही, सो छबि जाइ न बरनी॥

ब्रज-जुवती सब देखि चकित भइँ, सुन्दरता की सरनी।
चिरजीवहु जसोदा को नंदन, सूरदास को तरनी॥

(३)

माखन खात हंसत किलकत हरि पकरि स्वच्छ घट देख्यो।
निज प्रतिबिंब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यो॥

मन में माख करत, कछु बोलत, नंद-बबा पै आये।
वा घट में काहू के लरिका मेरो माखन खाये॥

महर कंठ लावत, मुख पोंछत, चूमत तिहि ठां आये।
हिरदै दिये लख्यो वा सुत को, ता तें अधिक रिसाये॥

कह्यो जाइ जसुमति सों ततछन, मैं, जननी, सुत तेरो।
आजु नंद सुत और कियो, कछु कियो न आदर मेरो॥

जसुमति बालबिनोद जानि जिय उहाँ ठौर ले आयी।
दोउ कर पकरि डुलावन लागी, घट में नहिं छबि पायी॥

कुंवर हंस्यो आनंद-प्रेम बस, सुख पायो नंद-रानी।
सूर, जु प्रभु की अद्भुत लीला जिन जानी तिन जानी॥

(४)

कजरी को पय पियहु, लाल, जा सों तेरी बेनी बढ़ै।
जैसे देखि और ब्रजबालक, त्यों बल-बैस बढ़ै॥

यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यों-त्यों लयो लढ़ै।
अँचवत पय तातो जब लाग्यो, रोवत जीभ डढ़ै॥

पुनि पीवत ही कच टकटोरत, झूठहिं जननि रढ़ै।
सूर, निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै॥

(५)

पांड़े नहिं भोग लगावन पावै।
करि-करि पाक जबै अरपत है, तब-हीं-तब छ्वै आवै॥

इच्छा करि मैं बाम्हन नौत्यो, ता को स्याम खिझावै।
वह अपने ठाकुरहि जिमावै, तू कैसे उठि धावै॥

जननी, दोस देति कत मो को, बहु बिधान करि ध्यावै।
नैन मूँदि, कर जोरि, नाम लै, बार-हि-बार बुलावै॥

कहि अंतर क्यों होइ भगत सों, जो मेरे मन भावै।
सूरदास बलि-बलि बिलास पर, जनम-जनम जस गावै॥

(६)

जसुदा देखति है ठिग ठाढ़ी।
बाल-दसा अवलोकि स्याम की, प्रेम-मगन चित बाढ़ी॥

पूजा करत नंद रहे बैठे, ध्यान समाधि लगायौ।
चुपकेहि आनि कान्ह मुख मेल्यो, देखौं देव-बड़ाई॥

खोजत नंद चकित चहुं दिसि तें, अचरज सो कछु, भाई।
कहां गये मेरे इष्ट-देवता, को लै गयो उठायी॥

तब जसुमति सुत-मुख दिखरायो, देखो बदन कन्हाई।
मुख कत मेलि देवता राख्यो, घाले सबै नसायी॥

बदन पसारि सिला जब दीन्ही, तीनों लोक दिखायी।
सूर,निरखि मुख नंद चकित भये, कछू बचन नहिं आई॥

(७)

जसोदा, कहाँ लौं कीजै कानि।
दिन प्रति कैसे सही परति है दूध-दही की हानि॥

अपने या बालक की करनी जो तुम देखो आनि।
गोरस खाइ खवावै लरिकनि, भाजत भाजन भानि॥

मैं अपने मंदिर के कोने माखन राख्यो जानि।
सोई जाइ तुम्हारे ढोटा लीन्हों है पहिचानि॥

बूझी ग्वालिन, घर में आयो, नैकु न संका माना।
सूर, स्याम यह उतर बनायो, चोंटी काढ़तु पानी॥

(८)

साँवरेहिं बरजति क्यों जु नहीं ?
कहा करौं, दिन-प्रति की बातें, नाहिंन परति सही॥

माखन खात, दूध लै डारत, लेपत देह दही।
ता पाछे घरहू के लरिकनु, भाजत छिरकि मही॥

जौ कछु धरहिं दुराइ दूरि लै, जानत ताहि तँही।
सुनहु महरि, तेरे या सुत सों हम पचि हारि रहीं।

चोर, अधिक चतुराई सीखी, जाइ न कथा कही।
ता पर सूर बछरुवनि ढीलत, बन-बन फिरतिं बही॥

(९)

मैया मोरी, मैं माखन नहि खायो।

भोर भये गैयन के पाछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर बंसीबट भटक्यो, साँझ परे घर आयो॥

मैं बालक बँहियनको छोटो, छींको किस बिधि पायो।
ग्वाल-बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो॥

तू जननी मन की अति भोरी, इन के कहे पतियायो।
तेरे जिय कछु भेद उपजिहै, जानि परायो जायो॥

यह लै अपनी लकुट-कमरियाँ, बहुतै नाच नचायो।
सूरदास, तब हँसी जसोदा, लै उर कंठ लगायो॥

(१०)

स्याम सखा को गेंद चलाई।
श्रीदामा मुरि अग बचायो, गद परयो कालीदह जाई॥

धाइ गही तब फेंट स्याम की, देहु न मेरो गेंद मँगाई।
और सखा जिनि मोको जानो, मो सों जिनि तुम करौ ढिठाई॥

जानि-बूझि तुम गेंद गिरायो, अब दीन्हे ही बनै, कन्हाई।
सूर, सखा सब हँसत परसपर, भली करी हरि, गेंद गिराई॥

(११)

फेंट छाँड़ि देहु मेरी, श्रीदामा।
काहे को तुम रारि बढ़ावत तनक बात के कामा॥

मेरो गेंद लेहु ता बदले, बाँह गहत कत धाइ।
छोटो-बड़ो न जानत काहू, करत बराबरि आइ॥

हम काहे को तुमहिं बराबर, बड़े नंद के पूत।
सूर, स्याम दीन्हे ही बनिहै, बहुत कहावत धूत॥

(१२)

तो सों कहा धुताई करिहौं।
जहां करी तहँ देखी नाहीं, कहा तोसों मैं लरिहौं॥

मुँह सँभारि तू बोलत नाहीं, कहत बराबरि बात।
पावहुगे अपनो कियो अब हीं, रिसन कँपावत गात॥

सुनहु, स्याम, तुम हूँ सरि नाहीं, ऐसे गये बिलाई।
हम सों सतर होत, सूर जु प्रभु, कमल देहु अब जाइ॥

(१३)

रिस करि लीन्हीं फेट छँडाई।
सखा सबै देखत हैं ठाढ़े, आपुन चढ़े कदम पर धाई॥

तारी दै-दै हँसत सबै मिलि स्याम गये तुम भाजि डराई।
रोवत चले श्रीदामा घर को, जसुमति आगे कैहौं जाई॥

'सखा-सखा' कहि स्याम पुकारयो गेंद आपुनो लेहु न आई।
सूर, स्याम पीतांबर काछे कूदि परे वह में महराई॥

(१४)

हाइ-हाइ करि सखनि पुकार्‌यो ।
गेंद काज यह करी श्रीदामा, नंदमहर को ढोटा मार्‌यो ॥

जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि इक छींकी ।
ठिठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी, बात नहीं कछु नीकी ॥

आइ अजिर निकसी नँदरानी, बहुरौ दोष मिटाइ ।
मंजारी आगे दै निकसी पुनि फिरि आँगन आइ ॥

व्याकुल भई, निकसि गई बाहिर, कहां धौं गयो कन्हाई ।
बाँयों काग, दहिन खर-सूकर, व्याकुल घर फिरि आई ॥

खन भीतर, खन बाहिर आवति, खन आँगन इति भाँति ।
सूर, स्याम को टेरत जननी, नेकु नहीं मन सांति ॥

(१५)

ब्रजबासी सब भये बिहाल ।
कान्ह-कान्ह कहि-कहि टेरत हैं व्याकुल गोपी-ग्वाल ॥

अब को बसै जाइ ब्रज हरि बिनु, धिक जीवन नर-नारि ।
तुम बिनु यह गति भयी सबनि की, कहां गये, बनवारि ?

प्रातहि लै जल भीतर पैठे, होन लग्यो जुग जाम ।
कमल लिये, सूरजु, प्रभु आवत, सब सौं कही बलराम ॥

(१६)

फन-फन प्रति निरतत नंद-नंदम ।
जल भीतर जुग जाम रहे कहुं, मिट्यौ नहीं तन चंदन ।।

उहै काछनी कटि, पीतांबर, सीस मुकुट अति सोहत ।
मानौ गिरि पर मोर अनंदित देखत ब्रजजन मोहत ।।

अंबर थके अमर ललना संग, जै-जै धुनि तिहुं लोक ।
सूर, स्याम काली पर निरतत आवत हैं ब्रज-ओक ।।

(१७)

बादर घुमड़ि-घुमड़ि आये ब्रज पर,
बरखत कारे-धूमरे घटा अति ही जल ।।

चपला अति चमचमात, ब्रज-जन सब डरडरात,
टेरत सिसु पिता-मात, ब्रज · गलबल ।।

गरजत धुनि प्रलयकाल, गोकुल भयो अंधकार,
चकित भये ग्वाल-बाल, घहरत नभ, करत चहल ।

पूजा मेटि गोपाल, इंद्र करत इहै हाल,
सूर, स्याम, राखहु अब गिरिबर-बल ।।

(१८)

ब्रज के लोग फिरत बितताने ।
गैयन लै बन ग्वाल गये ते धाये आवत ब्रजहि पराने ॥

कोउ चितवत नभ-तन चक्रित ह्वै, कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने ।
कोउ लै ओट रहत बृच्छन को, अंधधुंध दिसि-बिदिसि भुलाने ॥

कोउ पहुँचे जैसे-तैसे गृह, कोउ ढूंढ़त गृह नहिं पहिचाने ।
सूरदास, गोबर्धन-पूजा कीने कर फल लेहु बिहाने ॥

(१६)

बरखत मेघबर्त्त धरनी पर ।
मूसलधार सलिल बरखतु हैं, बूँद न आवत भू पर ॥

चपला चमकि-चमकि चक-चौंधित, करति सबद-आघात ।
अंधाधुंध पवनबर्त्तक घन करत फिरत उतपात ॥

निसि सम गगन भयो आच्छादित, बरखि-बरखि झर इंद ।
सूरदास, ब्रज राखि लियो धरि, कर गिरिबर गोबिंद ॥

(२०)

छबीले, मुरली नैकु बजाउ ।
बलि-बलि जात सखा यह कहि-कहि अंधुर सुधारस प्याउ ॥

दुरलभ जनम, दुलभ बृंदाबन, दुरलभ प्रेम-तरंग ।
ना जानिये बहुरि कब ह्वै है, स्याम, तुम्हारो संग ॥

बिनती करहिं सुबल-श्रीदामा, सुनहु स्याम, दै कान।
जा रस को सनकादि सुकादिक करत अमर मुनि ध्यान॥

कब पुनि गोप भेस ब्रज धरि हौ किरिहौ सुरभिन साथ।
कब तुम छाक छीनि के खैहौ, हो गोकुल के नाथ॥

अपनी-अपनी कंध-कमरियाँ ग्वालनि दयी डसाइ।
सौंह दिवाइ नंद-बाबा की रहे सकल गहि पांइ॥

सुनि-सुनि दीन गिरा मुरलीधर चितये मुख मुसुकाइ।
गुनगँभीर गोपाल मुरलि कर लीन्ही तबहिं उठाइ॥

धरि करि बेनु अधर मनमोहन कियो मधुर धुनि गान।
मोहे सकल जीव जल-थल के सुनि बारयो तन-प्रान॥

उपजावत गावत अति सुन्दर अनाघात के ताल।
सरबसु दियो मदनमोहन को प्रेम हरखि सब ग्वाल॥

डुलति लता नहिं, मरुत मंद गति, सुनि सुन्दर मुख बैन।
खग मृग मीन अधीन भये सब, कियो जमुन-जल सैन॥

आयसु दियो गोपाल सबनि को सुखदायक जिय जानि।
सूरदास चरननि रज-माँगत, निरखत रूप निधान॥

———

(३) यशोदा – विलाप

(१)

जसोदा बार-बार यों भाखै ।
है कोउ ब्रज में हितू हमारो, चलत गोपालहिं राखै ?

कहा काज मेरे छगन-मगन को, नृप मधुपुरी बुलायो ?
सुफलक-सुत मेरे प्रान हतन को, काल रूप है आयो ।।

बरु ए गोधन हरो कंस सब, मोहि बंदि लै मेलो ।
इतनो ही सुख, कमलनयन मेरी अँखियन आगे खेलो ।।

बासर बदन विलोकत जीवौं, निसि निज अंकम लावौं ।
तेहि बिछुरत जौ जियौं करम बस, तौ हँसि काह बुलावौं ।।

कमलनयन-गुन टेरत-टेरत अधर बदन कुम्हिलानी ।
सूर, कहाँ लगि प्रगट जनावौं, दुखित नंद की रानी ।।

(२)

जसोदा कान्ह-कान्ह कै बूझै ।
फूटि न गयी तिहारी चारों, कैसे मारग सूझै ?

इक तन जरो जात बिनु देखे, अब तुम दीन्ही फूँकि।
यह छतियाँ मेरे कुंवर कान्ह बिनु फटि न भयीं दो टूकि ॥

धिग तुम, धिग वै चरन, अहो पति, अधबोलन उठि धाये।
सूर, स्याम-बिछुरन की हम पै देन बधाई आये!

(३)

नंद, हरि तुमसों कहा कह्यो ?
सुनि-सुनि निठुर बचन मोहन कै क्यों करि हृदय रह्यो ॥

छाँड़ि सनेह चले मंदिर कत, दौरि न चरन गह्यो।
फाटि न गयी बज्र की छाती, कत यहि सूल सह्यो ॥

सुरति करत मोहन की बातें नैननि नीर बह्यो।
सुधि न रही अति गलित गात भयौ जनु डसि गयो अह्यो ॥

कृस्न छाँडि गोकुल कत आये चाखन दूध-दह्यो।
तजे न प्रान, सूर, दसरथ लौं, हुतो जनम निबह्यो ॥

(४)

अब तू मारिबोई करति।
रेखनि आगे कहि जो आवत, अब लै भांड़े भरति ॥

रोस कै, कर दांवरी लै, फिरति घर-घर धरति।
कठिन हिय करि तब जो बांध्यो, अब बृथा करि मरति॥

नृपति कंस बुलाइ पठयो, बहुत कै जिय डरति।
इह कछु बिपरीत मो मन माँझ देखे परति॥

होनहारी होइहै सोई, अब इहां कत अरति।
सूर, तब किन फेरि राखे? पांइ अब केहि परति?

(५)

माई, हौं किन संग गयी!
हौं ए दिन जानत ही बूढ़ी लोगन की सिखई।

मो को बैरी भये कुटुंब सब, फेरि-फेरि ब्रज गाड़ी।
जौ हौं कैसेहु जान पावती तौ कत आवति छाँड़ी॥

अब हौं जाइ जमुन-जल बहिहौं, कहा करौं मोहिं राखी।
सूरदास, वा भाइ फिरत हौं, ज्यों मधु तोरे माखी॥

(६)

मेरे कुंअर कान्ह बिनु सब कछु बैसेहि धरयो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेति गहै॥

सूने भवन जसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहैं।
नित उठ घर घेरत हीं ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै॥

जो ब्रज में आनन्द हुतो, मुनि मनसाहू न गहै।
सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै॥

(७)

मेरे कान्ह कमल-दल-लोचन!
अब की बेर बहुरि फिरि आवहु, कहा लगे जिय सोचन।

यह लालसा होत जिय मेरे, बैठी देखति रहिहौं।
गाय चरावन कान्हकुंवर सों भूलि न कबहूं कहिहौं॥

करत अन्याय न बरजौं कबहूँ, अरु माखन की चोरी।
अपने जियत नयन भरि देखौं हरि-हलधर की जोरी॥

एक बेर ह्वै जाहु इहाँ लौं अनत काहु के ऊतर।
चारिउ दिवस आनि सुख दीजै, सूर, पहुनई-सूतर॥

(८)

ऊधो तिहारे पांइ लागवि हौं, कहियौ इतनी बात।
इतनी दूर बसत क्यों बिसरे, अपनी जननी, तात॥

जा दिन तें मधुपुरी सिधारे, स्याम मनोहर गात।
ता दिन तें मेरे नैन-पपीहा दरस-प्यास अकुलात॥

जौ कबहूँ उठि जात खरिक लौं गाइ दुहावन प्रात।
दुहत देखि औरन के लरिका प्रान निकसि नहिं जात॥

जहाँ खेलन को ठौर तुम्हारे, नंद देखि मुरझात।
सूरदास, बहुरौ कब देखौं, कोमल कर दधि खात॥

(४) गोपी-विरह

(१)

हरि परदेस बहुत दिन लाये।
कारी घटा देखि बादर की नैन नीर भर आये॥

पा लागौं, तुम बीर बटाऊ, कौन देस तें धाये।
इतनी पतियां मेरी दीजो, जहां स्यामघन छाये॥

दादुर, मोर, पपीहा बोलत, सोवत मदन जगाये।
सूरदास, स्वामी जो बिछुरे, आपुन भये पराये॥

(२)

रु अे बदरा हू बरसन आये।
अपनी अवधि जानि, नंदनंदन, गरजि गगन घन छाये॥

सुनियत हैं सुरलोक बसत, सखि, सेवक सदा पराये।
चातक-कुल की पीर जानिकै, तेउ तहां ते धाये॥

द्रुम किये हरित, हरखि बेली मिलि, दादुर मृतक जिवाये।
सूरदास, प्रभु रसिक-सिरोमनि मधुबन बसि बिसराये॥

(३)

कैसे कै भरि हैं री दिन सावन के।
हरित भूमि, भरे सलिल सरोवर, मिटे मग मोहन आवन के॥

दादुर सोर मोर चातक पिक निसिहिं निसांस न पावन के।
गरजत घुमरि घमंड दामिनी, मदन धनुस धरि धावन के॥

पहिरि कुसुम सारी कंचुकि तनु झुंडनि झुंडनि गावन के।
सूरदास, निसि कैसे निघटत, किये त्रिगुन सिर रावन के॥

(५)

हमारे, माई, मोरवा बैर परे।
घन गरजे बरजे नहिं मानत, त्यों-त्यों रटत खरे।

करि इक ठौरि, बीन इन के पंख, मोहन सीस धरे।
याही तें हमही को मारत, हरि ही ढीठ करे॥

को जानै काहे तें, सजनी, हम सों रहत अरे।
सूरदास, परदेस बसे हरि, ये ब्रज तें न टरे॥

(५)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यो॥

अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, संपुट मांझ गह्यो।
सारंग प्रीति करी जु नाद सों, सनमुख बान सह्यो॥

हम जो प्रीति करी माधो सों, चलत न कछू कह्यो।
सूरदास, प्रभु बिन दुख दूनो, नैननि नीर बह्यो॥

(६)

ऊधो, सरद-समय हू आयो।
बहुतै दिवस रटत चातक तकि, तेउ स्वाति-जल पायो॥

कबहुँक ध्यान धरत उर अंतर, मुख मुरली लै गावत?
सो रस-रास पुलिन-जमुना को, ससि देखे सुधि आवत॥

जा सों लगन प्रीति अंतरगत, औगुन गुन करि भावत।
हम सों कपट, लोक-डर ता तें, सूर सनेह जनावत॥

(७)

मधुकर, मन सुनि जोग डरै।
तुम तौ चतुर कहावत अति ही, इतनी न समुझि परै ?

और सुमन जु अनेक सुगंधित, सीतल रुचि जो करै।
क्यों तुम को कहि बनै सरोजनि, और सबै अनरै ?

दिनकर महाप्रताप-पुँज बर, सब को तेज हरै।
क्यों न चकोर छाँड़ि मृग-अंकहि वा को ध्यान धरै ?

उलटोइ ग्यान सकल उपदेसत, सुनि सुनि हृदय जरै।
जंबू-वृच्छ, कहो क्यों, लंपट, फल बर अब फरै ?

मुकता अवधि मराल प्रान में, अब लगि ताहि चरै।
निघटत निपट, सूर, ज्यों जल बिनु व्याकुल मीन मरै ॥

(८)

बिलग जनि मानहु, ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजर की कोठरी, जे आवहि ते कारे ॥

तुम कारे, सुफलक-सुत कारे, कारे मधुप भंवारे।
तिनहूं मांझ अधिक छबि उपजत, कमलनैन मनियारे ॥

मानहु नील माट में बोरे, लै जमुना जु पखारे।
ता गुन स्याम भयी कालिंदी, सूर, स्याम-गुन न्यारे॥

(६)

ऊधो, हमें कहा समुझावहु।
पसु-पंछी सुरभी ब्रज की सब देखि स्रवन सुनि आवहु॥

तृन न चरत गो, पिवत न सुत पै, ढूँढ़त बन-बन डोलैं।
अलि-कोकिल दै आदि बिहंगम भीत भयानक बोलैं॥

जमुना भई स्याम स्याम बिनु अंध छीन जिमि रोगी।
तरुवर पत्र-बसन न सँभारत, बिरह बच्छ भये जोगी॥

गोकुल के सब लोग दुखित हैं, नीर बिना ज्यों मीन।
सूरदास, प्रभु, प्रान न छूटत अवधि आस में लीन॥

(१०)

ऊधो, तिहारे मैं चरन लागौं,
बारक यहि ब्रज करियो बिभावरी।
निसि न नींद आवै, दिवस न भोजन भावै,
चितवत मग भई दृष्टि झाँवरी॥
एक स्याम बिन कछू न भावै,
रटत फिरत जैसे बकत बावरी॥

या बृंदाबन सघन स्याम बिनु
तहां जमुना बहै सुभग साँवरी ॥
लाज न होति उहैं चलि जातीं,
चलि न सकति, आवै बिरह ताव री ॥
सूरदास, प्रभु आनि मिलावहु,
ऊधो, कीरति होइ रावरी ॥

२ तुलसीदास

(१) रामचरितमानस

(१) केवट-प्रसंग

बरबस राम सुमंत्र पठाये।
सुरसरि तीर आपु तब आये।
माँगी नाव, न केवट आना।
कहइ, तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन-कमल-रज कहँ सबु कहई।
मानुख-करनि मूरि कछु अहई।
छुअत सिला भई नारि सुहाई।
पाहन तें न काठ कठिनाई।
तरनिउँ मुनि-घरनी होइ जाई।
बाट परइ, मोरि नाव उड़ाई।
एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू।
नहिं जानौं कछु अउर कबारू।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू।
मोहि पद-पदुम पखारन कहहू।

पद-कमल धोइ, चढ़ाइ नाव, न नाथ, उतराई चहौं
मोहि, राम, राउरि आन, दसरथ सपथ, सब साँची कहौं ॥
बरु तीर मारहु लखन पै, जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न, तुलसीदास, नाथ कृपालु, पारु उतारिहौं ॥

सुनि केवट के बयन प्रेम-लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना-अयन, चितै जानकी-लखन तन ॥१॥

कृपासिंधु बोले मुसुकाई।
सोइ करु जेहि तव नाव न जाई।
बेगि आनु जल, पांय पखारू।
होत बिलंब, उतारहि पारू।
जासु नाम सुमिरत एक बारा।
उतरहि नर भवसिंधु अपारा।
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा।
जेहि जगु किय तिहुं पगहुं ते थोरा।
पद-नख निरखि देवसरि हरषी।
सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी।
केवट राम-रजायसु पावा।
पानि कठवता भरि लेइ आवा।
अति आनंद उमगि अनुरागा।
चरन-सरोज पखारन लागा।

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।
एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारि करि, प्रभुहिं पुनि मुदित गयेउ लेइ पार ॥२॥

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि-रेता।
सीय-राम गुह-लखन-समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा।
प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।
पिय-हिय की सिय जाननिहारी।
मनि-मुँदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ कृपाल, लेहि उतराई।
केवट चरन गहे अकुलाई।
नाथ, आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।
आज दीन्हि बिधि बनि भलि पूरी।
अब कछु, नाथ, न चाहिअ मोरे।
दीनदयाल अनुग्रह तोरे।

फिरती बार मोहि जो देवा।
सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा।

बहुत कीन्ह प्रभु-लषन-सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ॥३॥

(२) भरत का चित्रकूट गमन

सौंपि नगरु सुचि सेवकनि सादर सबहि चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब चले भरतु दोउ भाइ ॥१॥

राम—दरस—बस सब नरनारी।
जनु करि-करिनि चले तकि बारी॥
बन सिय राम समुझि मन माहीं।
सानुज भरत पयादेहि जाहीं॥
देखि सनेहु लोग अनुरागे।
उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली।
राममातु मृदुबानी बोली॥
तात, चढ़उ रथ, बलि महतारी।
होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥

तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू।
सकल सोक-कृस नहिं मग-जोगू॥
सिर धरि बचन चरन सिरु नाई।
रथ चढ़ि चलत भये दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू।
दूसर गोमतितीर निवासू॥

पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत रामहित नेम ब्रत परिहरि भूषन-भोग॥२॥

सई-तीर बसि चले बिहाने।
स्रृंगवेरपुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा।
हृदय बिचार करइ सबिषादा॥
कारन कवन भरतु बन जाहीं।
है कछु कपटभाउ मनमाहीं॥
जौं पै जिय न होति कुटिलाई।
तौ कत लीन्हि संग कटकाई॥
जानहिं सानुज रामहि मारी।
करउँ अकंटक राजु सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी।

तब कलंकु अब जीवनहानी ॥
सकल सुरासुर जुरहि जुझारा ।
रामहि समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरत अस करहीं ।
नहिं विषबेलि अमिय फल फरहीं ॥

अस बिचारि गुह ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु ।
हथबासहु बोरहु तरनि कीजिय घाटारोहु ॥३॥

होहु संजोइल रोकहु घाटा ।
ठाटहु सकल मरइ के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ ।
जियत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥
समरु मरनु पुनि सुर-सरि-तीरा ।
रामकाजु छनभंगु सरीरा ॥
स्वामिकाज करिहउँ रन रारी ।
जस धवलिहहुँ भुवन दसचारी ॥
बेगहि भाइहु सजहु संजोऊ ।
सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा ।
एकहिं एक बढ़ावहिं करषा ॥

भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि ।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहिं ॥४

रामप्रताप नाथ बल तोरे ।
करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे ॥
जीवत पाउँ न पाछे धरहीं ।
रुंड-मुंड-मय मेदिनि करहीं ॥
दीख निषादनाथ भल टोलू ।
कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥
एतना कहत छींक भई बायें ।
कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाये ॥
बूढ़ एकु कह सगुन बिचारी ।
भरतहि मिलिय न होइहि रारी ॥
रामहिं भरतु मनावन जाहीं ।
सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं ॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा ।
सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझे ।
बड़ि हितहानि जानि बिनु जूझे ॥

गहहु घाट भट सिमिटि सब लेउँ मरमु मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तब तस करिहउँ आइ ॥५॥

लखब सनेहु सुभाय सुहाये।
बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराये॥

अस कहि भेंट सँजोवन लागे।
कंद मूल फल खग मृग मांगे॥

मीन पीन पाठीन पुराने
भरि भरि भार कहारन्ह आने।

मिलन साजु सजि मिलन सिधाये।
मंगलमूल सगुन सुभ पाये॥

देखि दूरि ते कहि निजनामू।
कीन्ह मुनीसहि दंडप्रनामू॥

जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा।
भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा॥
रामसखा सुनि स्यंदनु त्यागा।
चले उतरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई।
कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ॥६॥

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती।
लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला।
सुर सराहि तेहि बरसहिं फूला॥
लोक बेद सब भांतिहि नीचा।
जासु छांह छुइ लेइय सींचा॥
तेहि भरि अंक राम-लघु-भ्राता।
मिलत पुलक-परिपूरित गाता॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं।
तिन्हहिं न पापपुंज समुहाहीं॥
एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा।
कुलसमेत जगु पावन कीन्हा॥
करम-नास-जलु सुरसरि परई।
तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नामु जपत जग जाना।
बालमीकि भये ब्रह्म समाना॥
स्वपच सबर खस जमन जड़ पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥७॥
नहिं अचरज जुग जुग चलि आई।
केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥

राम-नाम-महिमा सुर कहहीं।
सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥
रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा।
पूछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू।
भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा।
भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी।
बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥
कुसल-मूल पदपंकज पेखी।
मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे।
सहित कोटि कुल मंगल मोरे॥

समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ-रघु-बीर-पद जग बिधिबंचित सोइ॥८॥

कपटी कायरु कुमति कुजाती।
लोक बेद बाहिर सब भांती॥
राम कीन्ह आपन जबहीं तें।
भयउँ भुवन भूषन तबहीं तें॥

देखि प्रीति सुनि बिनय बड़ाई।
मिलेउ बहोरि भरत-लघु-भाई॥
कहि निषाद निज नामु सुबानी।
सादर सकल जोहारी रानी॥
जानि लखन सम देहि असीसा।
जियहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषादु नगर-नर-नारी।
भये सुखी जनु लखनु निहारी।
कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू।
भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज-भाग-बड़ाई।
प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥

सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख-पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनायेन्हि जाइ॥६॥

सृंगबेरपुर भरत दीख जब।
भे सनेहबस अंग सिथिल तब॥
सोहत दिये निषादहि लागू।
जनु तनु धरे बिनय अनुरागू॥
एहि बिधि भरत सेनु सब संगा।

दीख जाइ जग-पावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू ।
भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥
करहि प्रनाम नगर-नर-नारी ।
मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मज्जनु मांगहिं कर जोरी ।
रामचंद्र-पद प्रीति न थोरी ॥
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू ।
सकल-सुखद सेवक-सुर-धेनू ॥
जोरि पानि बर मांगहुँ एहू ।
सीय-राम-पद सहज सनेहू ॥

एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुरु-अनुसासन पाइ ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लेवाइ ॥१०॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा ।
भरत सोधु सबही कर लीन्हा ॥
गुरुसेवा करि आयसु पाई ।
राममातु पहिं गे दोउ भाई ॥
चरन चापि कहि कहि मृदुबानी ।
जननी सकल भरतु सनमानीं ॥

भाइहि सौंपि मातु सेवकाई।
आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥
चले सखा कर सों कर जोरे।
सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे॥
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ।
नेकु नयन-मन-जरनि जुड़ाऊ॥
जहँ सिय रामु लखनु निसि सोये।
कहत भरे जल लोचन-कोये॥
भरतबचन सुनि भयउ बिषादू।
तुरत तहां लेइ गयउ निषादू॥

जहँ सिंसुपा पुनीत तरु रघुबर किये बिस्रामु।
अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु॥११॥

कुस साथरी निहारि सुहाई।
कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥
चरन-रेख-रज आंखिन्ह लाई।
बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥
कनकबिंदु दुइ चारिक देखे।
राखे सीस सीयसम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी।

कहत सखा सन बचन सुबानी ॥
भीहत सीयबिरह दुतिहीना ।
जथा अवध नरनारि मलीना ॥
पिता जनक देउँ पटतर केही ।
करतल भोगु जोगु जग जेही ॥
ससुर भानु-कुल-भानु भुआलू ।
जेहि सिहात अमिरावतिपालू ॥
प्राननाथ रघुनाथ गोसाईं ।
जो बड़ होत सो राम-बड़ाई ॥

पतिदेवता सु-तीय-मनि सीय साथरी देखि ।
बिहरत हृदय न हहरि मम पबि तें कठिन बिसेखि ॥१२॥

लालनजोग लखन लघु लोने ।
भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे ।
सिय रघुबीरहि प्रानपियारे ॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ ।
तात बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भांती ।
निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर।
रूप सील सुख सब गुनसागर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता।
रामसुभाउ सबहि सुखदाता॥
बेरिउ राम-बड़ाई करहीं।
बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद कोटि कोटि सत सेखा।
करि न सकहिं प्रभु-गुन-गन-लेखा॥

सुखसरूप रघु-बंस-मनि मंगल-मोद-निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधिगति अतिबलवान॥१३

राम सुना दुख कान न काऊ।
जीवननरु जिमि जोगवइ राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती।
जोगवहिं जननि सकल दिनराती॥
ते अब फिरत बिपिन पदचारी।
कंदमूल फलफूल अहारी॥
धिग कैकेइ अमंगलमूला।
भइसि प्रान प्रियतम-प्रतिकूला॥

मैं धिगधिग अघउदधि अभागी।
सब उतपात भयेउ जेहि लागी॥
कुलकलंकु करि सृजेउ बिधाता।
साईं द्रोह मोहिं कीन्ह कुमाता॥
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू।
नाथ करिय कत बादि बिषादू॥
राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं।
एह निरजोसु दोसु बिधि बामहिं॥

बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सों राम प्रीतमु कहत हौं सौंहैं किये।
परिनाम मंगलु जानि अपने आनिये धीरजु हिये॥

अंतरजामी रामु, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिय करिय बिस्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन॥१४॥

सखाबचन सुनि उर धरि धीरा।
बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यह सुधि पाइ नगर-नर-नारी।
चले बिलोकन आरत भारी॥

परदछिना करि करहिं प्रनामा ।
देहिं कैकेइहि खोरि निकामा ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं ।
बामबिधातहि दूषन देहीं ॥
एक सराहहिं भरतसनेहू ।
कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि ।
को कहि सकइ बिमोह बिषादहि ॥
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा ।
भा भिनुसारु गुदारा लागा ॥
गुरुहि सुनाव चढ़ाइ सुहाई ।
नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥
दंड चारि महँ भा सब पारा ।
उतरि भरत तब सबहि सँभारा ॥

प्रातक्रिया करि मातुपद बंदि गुरुहि सिरु नाइ ।
आगे किये निषादगन दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥१५॥

कियेउ निषादनाथु अगुआईं ।
मातु पालकी सकल चलाईं ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा ।
बिप्रन्ह सहित गवन गुरु कीन्हा ॥

आपु सुरसरहि कीन्ह प्रनामू ।
सुमिरे लखन सहित सियरामू ॥
गनने भरत पयादेहि पाये ।
कोतल संग जाहिं डोरिआये ॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा ।
होइय नाथ अस्व असवारा ॥
रामु पयादेहि पाय सिधारे ।
हम कहँ रथ गज बाजि बनाये ॥
सिरभर जाउँ उचित अस मोरा ।
सब ते सेवक-धरमु कठोरा ॥
देखि भरतगति सुनि मृदुबानी ।
सब सेवकगन गरहिं गलानी ॥
भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥१६॥
झलका झलकहिं पायन्ह कैसे ।
पकजकोस ओसकन जैसे ॥
भरत पयादेहि आये आजू ।
भयउ दुखित सुनि सकलसमाजू ॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाये ।
कीन्ह प्रनामु त्रिवेनिहि आये ॥

सबिधि सितासित नीर नहाने।
दिये दान महिसुर सनमाने॥
देखत स्यामल-धवल-हलोरे।
पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥
सकल-काम-प्रद तीरथराऊ।
वेदबिदित जग प्रकट प्रभाऊ।
मागउँ भीख त्यागि निजधरमू।
आरत काह न करइ कुकरमू।
अस जिय जानि सुजान सुदानी
सफल करहि जग जाचकबानी।
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन॥१७॥
जानहु राम कुटिल करि मोही।
लोग कहउ गुरु-साहिब-द्रोही॥
सीताराम-चरन रति मोरे।
अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ।
जाचत जलु पबिपाहन डारउ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई।
बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई॥

कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे।
तिमि प्रिय-तम-पद नेम निबाहे॥
भरतबचन सुनि मांझ त्रिबेनी।
भइ मृदुबानि सु-मंगल-देनी॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू।
राम-चरन-अनुराग-अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं।
तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं॥
तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि बेनिबचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरसहिं फूल॥१८॥

(२) कवितावली

(१) वन में श्रीराम

कीर के कागर ज्यौं नृप-चीर-
बिभूषन उप्पम अंगनि पायी।
औध तजी मग-बास के रूख ज्यौं,
पंथ के साथी ज्यौं लोग-लुगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया,
मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई।

राजिवलोचन राम चले तजि
बाप को राज बटाऊ की नाईं ॥१॥

पुर ते निकसी रघुबीर-बधू,
धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की,
पुट सूखि गये मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं—'चलनो अब केतिक,
पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै'?
तिय की लखि आतुरता पिय की
अंखियां अति चारु चलीं जल च्वै॥२॥

"जल को गये लक्खन हैं लरिका,
परिखौ, पिय, छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं,
अरु पायं पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े"॥
तुलसी, रघुबीर प्रिया-स्रम जानिकै
बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो,
पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥३॥

नाम अजामिल से खल कोटि
अपार नदी-भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन
होत, अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी, जेहि के पदपंकज तें
प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ
मांगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥४॥

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै
कटि लौं जल-थाह, देखाइहौं जू।
परसे पग-धूरि तरै तरनी,
घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू?
तुलसी, अवलंब न और कछू,
लरिका केहि भांति जिआइहौं जू?
बरु मारियै मोहिं, बिना पग धोये हौं,
नाथ, न नाव चढ़ाइहौं जू॥५॥

रावरे दोस न पायंन को,
पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।

पाहन ते बन-बाहन काठ को
कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायं पखारि कै नाव
चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है?
तुलसी, सुनि केवट के बर बैन
हंसे प्रभु जानकी-ओर हहा है॥६॥

बिंध्य के बासी उदासी तपी
व्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी तुलसी सो
कथा सुनि भे मुनि वृंद सुखारे॥
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखी
परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायक जू
करुना करि कानन को पगु धारे॥७॥

२. लंकादहन

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,
खोरि-खोरि धाइ आइ बांधत लंगूर हैं।

तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै-कै,
लात के आघात सहै, जी में कहे, 'कूर हैं' ॥
बाल किलकारी कै-कै, तारी दै-दै गारी देत,
पाछे लागे बाजत निशान-ढोल-तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर-ठौर दीन्हीं आगी,
बिंध की दवारि, कैधौं कोटि सत सूर हैं ॥८॥

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल, मानो
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी, सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी-कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहैं—
"कानन उजार्‌यो, अब नगर प्रजारी है" ॥९॥

'लागि-लागि आगि', भागि-भागि चले जहां-तहां
धीय को न माय, बाप पूत न संभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम धुंध अंध,
कहैं बारे-बढे 'बारि-बारि' बार-बार हीं॥

हय हिहिनात भागे जात, घहरान गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंधि-खौंधि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात, अकुलात अति-
तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं ॥१०॥

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पंवरि पगार प्रति, बानर बिलोकिये।
अर्ध-ऊर्ध बानर, बिदिसि-दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिये ॥
मूंदे आंखि हीय में, उघारे आंखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहां-तहां, और कोऊ को किये?
लेहु अबलेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ, जाइ जाहि-जाहि रोकिये ॥११॥

३. युद्ध-वर्णन

गहि मंदर बंदर-भालु चले,
सो मनो उनये घन सावन के।
तुलसी, उत झुंड प्रचंड झुके,
झपटैं भट जे सुरदावन के॥

बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे,
न टरे हठि बैर बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी-उपरा,
भले बीर रघुप्पति रावन के ॥१२॥

सर-तोमर-सेल-समूह पंवारत,
मारत बीर निशाचर के।
इत तें तरु ताल-तमाल चले,
खर खंड प्रचंड महीधर के॥
तुलसी, करि केहरि-नाद भिरे भट,
खग्ग खगे, खपुवा खरके।
नख-दंतन सों भुजदंड बिहंडत,
मुंड सों मुंड परे झरके॥१३॥

रजनीचर मत्तगयंद-घटा
बिघटै, मृगराज के साज लरै।
झपटै, भट कोटि मही पटकै,
गरजै रघुबीर की सौंह करै॥
तुलसी, उत हांक दसानन देत,
अचेत भे बीर, को धीर धरै?

बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत,
जो कालहु काल सो बूझि परै ॥१४॥

जे रजनीचर बीर बिलास,
कराल बिलोकत काल न खाये।
ते रन-रौर कपीस-किसोर
बड़े बरजोर परे फंग पाये॥
लूम लपेटि अकास निहारि कै
हाक उठी हनुमान चलाये।
सूखि के गात, चले नभ जात,
परे भ्रम-बात, न भूलत आये ॥१५॥

कुंभकरन हन्यो रन राम,
दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे।
पूसन-बंस-बिभूसन-पूसन-
तेज-प्रताप गरे अरि-ओरे॥
देव निशान बजावत, गावत,
सावंत गो, मन-भावत भो रे!
नाचत बानर-भालु सबै,
तुलसी, कहि "हारे! हहा भइया हो रे ॥१६॥

४. विनय

जाके बिलोकत लोकप होत
बिसोक, लहैं सुरलोग सुठौरहि ।
सो कमला तजि चंचलता, करि
कोटि कला, रिझवै सुरमौरहि ॥
ना को कहाय, कहै तुलसी,
तू लजाहि न मांगत कूकुर-कौरहि ।
जानकी जीवन को जन है जरि
जाउ सो जीह, जो जांचत औरहि ॥१७॥

सियराम-सरूप अगाध अनूप
बिलोचन-मीनन को जलु है ।
मुनि रामकथा, मुख राम को नाम,
हिये पुनि रामहिं को थलु है ॥
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों,
रति रामहिं सों, रामहिं को बलु है ॥
सब की न कहै, तुलसी के मते,
इतनो जग जीवन को फलु है ॥१८॥

(३) गीतावली

(१)

मुनि के संग बिराजत बीर ।
काकपच्छ-धर, कर कोदंड सर,
सुभग पीतपट, कटि तूनीर ॥१॥

बदन इंदु, अंबोरुह लोचन,
स्याम-गौर सोभा-सदन सरीर ।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि,
उर न समाति प्रेम की भीर ॥२॥

खेलत चलत करत मग कौतुक,
बिलंबत सरित-सरोवर-तीर ।
तोरत लता-सुमन सरसीरुह,
पियत सुधा-सम सीतल नीर ॥३॥

बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर,
पुनि-पुनि बरनत छांह-समीर ।
देखत नटत केकि, कल गावत,
मधुप-मराल-कोकिला-कीर ॥४॥

नयननि को फल लेत निरखि खग,
मृग—सुरभी—ब्रजबधू—अहीर ।
तुलसी, प्रभुहि देत सब आसन,
निज-निज मन-मृदु-कमल-कुटीर ॥५॥

(६)

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौं ?
चार बार भरि अंक, गोद लै, ललन कौन सो कहिहौं ॥

इहि आंगन बिहरत, मेरे बारे, तुम जो संग सिसु लीन्हें ।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत, बहु बिनोद तुम कीन्हें ॥

जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे, सुनि-सुनि हौं अनुरागी ।
तिन्ह स्रवननि बनगवन सुनित हौं, मो तें कौन अभागी ॥

जुग सम निमिस जाहि रघुनंदन, बदनकमल बिनु देखे ।
जौ तनु रहै बरस बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ॥

तुलसीदास, प्रेमबस श्रीहरि, देखि बिकल महतारी ।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि-फिरि, आवन कह्यो मुरारी ॥

(३)

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै ।
राम लखन मेरी यहैं भेंट, बलि, जाउँ जहाँ मोहिं मिलि लीजै ।

सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें ।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें ॥

पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो न जाग्यो ।
करम-चोर नृप पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो ॥

तुलसी रविकुल-रवि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई ।
लोग नलिन भए मलिन अवध सर बिरह-बिषम-हिमपाई ॥

(४)

जबहि रघुपति-संग सीय चली ।
बिकल-बियोग लोग पुरतिय कहैं, अति अन्याउ अली ॥

कोउ कहै, मनिगन तजत कांच लगि, करत न भूप भली ।
कोउ कहै, कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-बिख-फलनि फली ॥

एक कहैं, बन-जोग जानकी !, बिधि बड़ बिषम बली ।
तुलसी, कुलिसहु की कठोरता, तेहि दिन दलकि दली ॥

कहाँ सो विपिन हैं धौं केतिक दूरि।
जहाँ गवन कियौ कुँवर कोसलपति,
बूझति सिय पिय पतिहि बिसूरि ॥१॥

प्राणनाथ परदेस पयादेहि
चले सुख सकल तजे तृन तूरि।
करौं बयारि बिलंबिय बिटपतर,
झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि॥२॥

तुलसिदास प्रभु प्रियाबचन सुनि
नीरजनयन नीर आये पूरि।
कानन कहाँ अबहि, सुनु सुन्दरी,
रघुपति फिरि चितए हित भूरि ॥३॥

(६)

जेहि-जेहि मग सियराम लखन गये
तहँ-तहँ नर-नारि बिनु छर छरि गे।
निरखि निकाई-अधिकाई बिथकित भये
बच, बिय-नैन-सरसोभा-सुधा भरिगे ॥१॥

जोते बिनु, बये बिनु, निफत निराये बिनु,
सुकृत-सुखेत सुख-सालि फूलि-फर गे।
मुनिहुं मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ,
सुगम सो राम लघु लोगनि को करि गे ॥२॥

लालची कौड़ी के कूर, पारस परे हैं पाले,
जानत न को हैं, कहा कीबे सो बिसरि गे।
बुधि न बिचार, न बिगार न सुधार सुधि,
देह-गेह-नेह-नाते मन से निसरि गे ॥३॥

बरसि सुमन सुर हरसि-हरसि कहैं,
'अनायास भवनिधि नीच नीके तरि गे'।
सो सनेह समउ सुमिरि तुलसीहू के से
भली भांति भले पैत भले पांसे परि गे ॥४।

(७)

आजु को भोर और सो, माई।
सुनौं न द्वार बेद-बंदी-धुनि, गुनिगन-गिरा सोहाई ॥
निज-निज सुंदर पति सदननि तें, रूप-सील-छबि-छायीं।
लेन असीस सीय आगे करि मो पे सुत-बधू न आयीं ॥

बूझि हौं न बिहंसि मेरे रघुवर, 'कहां री सुमित्रा ! माता ?
तुलसी, मनहुं महासुख मेरो, देखि न सकेउ बिधाता ॥

(८)

काहे को मानत हानि हिये हौ ?
प्रीति नीति गुन सील धरम कहं तुम अवलंब दिये हौ ॥

तात, जात जानियै न ऐ दिन करि प्रमान पितु बानी ।
ऐहौं बेगि, धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी ॥

तुलसिदास, अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरन-पीठ निज दीने ।
मनहुं सबनि के प्रान-पाहरू भरत सीस धरि लीने ॥

(९)

आली ! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे ?
लेत हिये भरि भरि पति को हित, मातु हेतु सुत जैसे ॥

बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे ।
अंग लगाइ लिए बारे तें करुनामय सुत प्यारे ॥

लोचन सजल, सदा सोवत से, खान पान बिसराये ।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-मुरति उर आए ॥

तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहँस से जोरे।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवित राम लखन के थोरे॥

(१०)

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहु ते ह्यां कहा जात बह्यो॥

पति सुरपुर, सिय राम लखन बन, मुनिव्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो॥

मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहँ कुलिस लह्यो।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो॥

(११)

अवधि आजु किधौं औरो दिन ह्वै हैं।
चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि
बूझ धौं पथिक कहाँ तें आये हैं॥
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति
पुलकिगात आगे लोचन च्वै हैं।
निज बासरनि बरष पुरवैगो बिधि
मेरे तहँ करम कठिन कृत क्वै हैं॥

बन रघुबीर मातु गृह जीवित
निलज प्रान सुनि मुनि सुख स्वै हैं।
तुलसिदास मो सों कठोर चित
कुलिस सालभंजिक न को ह्वै हैं॥

(१२)

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुशल घर, कहु, काग, फुरि बाता॥

दूध भात की दोनी दैहौं, सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लखन उर लैहौं॥

अवधि समीप जानि जननी जिय अति आकुल अकुलानी।
गनक, बोलाइ, पाँय परि, पूछति प्रेम-मगन मृदुबानी॥

तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो।
प्रभु-आगमन सुनत, तुलसी, मनो मीन मरत जल पायो॥

(१३)

कैकेयी जौलों जियति रही।
तौलों बात मातु सों मुहँ भरि भरत न भूलि कही।

मानी राम अधिक जननी तें, जननिहु गँस न गही।
सीय-लसन-रिपुदवन, राम-रुख लखि सब की निबही॥

लोक-बेद-मरजाद दोस गुन गति चित चखन चही।
तुलसी, भरत समुझि सुनि राखी राम-सनेह सही॥

(४) विनय पत्रिका

(१)

बावरो रावरो नाह, भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद-बड़ाई भानी।

निज घर की घर बात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी।
सिव की दयी संपदा देखत श्री-सारदा सिहानी॥

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत हौं आयो नकबानी॥

दुख-दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली मैं जानी॥

प्रेम प्रसंसा बिनय ब्यंग जुत सुनि बिधि की बर बानी।
तुलसी, मुदित महेस मनहि-मन, जगत-मातु मुसकानी॥

(२)

काहे न रसना रामहि गावहि ।
निसि दिन पर-अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि ।

नरमुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि ।
बसि समीप रहि त्यागि सुधा कत रबिकर-जल कहँ धावहि ?

काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि सुनत स्रवन दै भावहि ।
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति करन-कलंक नसावहि ॥

जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि ।
सरन-सुखद रबिकुल-सरोज-रबि राम नृपहि पहिरावहि ॥

बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि ।
तुलसीदास भव तरहि, तिहुँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥

(३)

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम बचन अरु ही तें ॥

सहसबाहु, दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली तें ।
हम-हम करि धन-धाम संवारे, अंत चले उठि रीते ॥

सुत-बनितादि जानि स्वारथ-रत, न करु नेह सबही तें।
अंतहुं तोहि तजेंगे, पामर, तू न तजै अब ही तें?

अब नाथहि अनुराग, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी तें।
बुझै न काम-अगिनि, तुलसी, कहुँ, बिसय-भोग बहु घी तें॥

(४)

मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास-निरत चित अधिक अधिक लपटाई॥

नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन बासना मान मद, जीव सहज सुख त्यागे॥

परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भए, बचन दोष पर गाए।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराए॥

तुलसिदास व्रत दान ज्ञान तप सुद्धिहेतु स्रुति गावै।
रामचरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै॥

(५)

ऐसेहि जन्म-समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने॥

जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल-साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने॥

सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पाँय पिराने।
सदा मलीन पंथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने॥

यह दीनता दूरि करिबे को अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने॥

(६)

काहे तें हरि मोहिं बिसारो।
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो॥

पतितपुनीत दीनहित असरन-सरन कहत श्रुति चारो।
हौं नहिं अधम सभीत दीन ? किधौं बेदन मृषा पुकारो॥

खग-गनिका-गज-ब्याध-पांति जहँ तहँ हौं हूं बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो॥

जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तें न्यारो।
तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहिं भजते तजि गारो॥

मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम करहु प्रभाव तुम्हारो।
यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो॥

नाहिंन नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहुं पाप न जारो॥

(७)

याहि तें मैं हरि ग्यान गंवायो।
परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहि
बाहर फिरत बिकल भयो धायो॥

ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद
अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल
परम सुगंध कहाँ तें आयो॥

ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन
ऊपर कछु सिवार-तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजि हौं सठ
चाहत यहि बिधि तृषा बुझायौं॥

ब्यापत त्रिबिध ताप तन दारुन
तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने हि धाम नाम-सुरतरु तजि
बिसय-बबूर बाग मन लायो॥

तुम सम ग्यान-निधान, मोहि सम
मूढ़ न आन पुराननि गायो।
तुलसिदास, प्रभु, यह बिचारि जिय
कीजै नाथ, उचित मन भायो॥

(८)

जैसो हौं तैसो हौं, राम, रावरो, जन जनि परिहरियै।
कृपासिंधु कोसल-धनी
सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरियै॥

हौं तो बिगरायल ओर को, बिगरो न बिगरियै।
तुम सुधारि आये सदा
सब की सब बिधि, अब मेरीयौ सुधरियै॥

जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत इहि डर उरियै।
कपि-केवट कीन्हे सखा
जेहि सील सरल चित, तेहि सुभाउ अनुसरियै॥

अपराधी तउ आपनो, तुलसी, न बिसरियै।
टूटियौ बांह गरे परै
फूटे हूँ लोचन पीर होत हित करियै॥

(६)

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
सुनहु राम, बिनु रावरे
लोकहुं परलोकहुं कोउ न कहूँ हितु मेरो॥

अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन तज्यो
तिजरा को सो टोटक, औचट उलटि न हेरो॥

भगति-हीन बेद-बाहिरो लखि कलि-मल घेरो।
देवनि हू, देव, परिहर्‌यो
अन्याव न तिन को, हौं अपराधी सब केरो॥

नाम की ओट लै पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो।
जगत-बिदित बात ह्वै परी
समुझिये धौं अपने, लोक कि बेद बड़ेरो॥

ह्वै है जब तब तुमहि तें तुलसी को भलेरो।
देव, दिन-हि-दिन बिगरिहै,
बलि जाउं, बिलंब किये, अपनाइये सबेरो॥

३. राठौड़ पृथ्वीराज

ऋतु-वर्णन

ग्रीष्म

नदि दीह वधे, सर-नीर घटे निसि,
गाढ धरा, द्रव हेम गिरि।
सु-तरु छांह तदि दीध जगत सिरि,
सूर राह किय जगत सिरि ॥ १ ॥

आकुल थ्या लोक, केहवौ अचरिज,
वंछित छायाए विहित।
सरण हेम-दिसि लीधौ सूरिज,
सूरिज ही त्रिख-आसरित ॥ २ ॥

वर्षा

ऊपड़ी धुड़ीरव लागी अंबरि,
खेतिए ऊजम, भरिया खाद्र।
म्रिगसर वाइ किया किंकर म्रिग,
आद्रा वरसि कीध धर आद्र ॥ ३ ॥

वग रिखि राजान सु पावसि बैठा,
सुर सूता, थिउ मोर-सर।
चातक रटै, बलाकी चंचल,
हरि सिणगारै अंबहर ॥ ४ ॥

काली करि कांठलि, ऊजलि कोरग,
धारे स्रावण धरहरिया।
गलि चालिया दिसो-दिसि जलप्रभ,
थंभि न विरहणि-नयण थिया ॥ ५ ॥

वरसतै दड्ड नड्ड अनड्ड गाजियौ,
सघण गाजियौ गुहिर सदि।
जल-निधि ही सामाइ नहीं जल,
जल-धाला न समाइ जलदि ॥ ६ ॥

तरु-लता पल्लवित, त्रिणे अंकुरिव,
नीलाणी नीलंबर न्याइ।
प्रिथमी नदि-मै हार पहिरिया,
पहिरे दादुर नूपुर पाइ ॥ ७ ॥

जल-जाल स्रवत जल काजल ऊजल,
पीला हेक राता पहल।

आधोफरै मेघ ऊधसता,
महाराज राजै महल ॥ ८ ॥

शरद्

वितए आसोज मिले नभ वादल,
प्रिथी पंक, जल गुडल-पण ।
जिम सत-गुरु कलि कलुख तणा जण
दिपत ग्यान प्रगटे दहण ॥ ९ ॥

गो खीर स्रवति रस, धरा उदगिरति,
सर पोइणिए थयी सुस्री ।
वली सरद स्रग-लोग-वासिए
पितरे ही स्रित-लोक प्री ॥ १० ॥

बोलंति मुहुरमुह विरह गमै वे,
तिसी सुकल निसि सरद तणी ।
हंसणी ति न पासे देखै हंस,
हंस न देखै हंसणी ॥ ११ ॥

ऊजले अदरिसण निसि उजुआली,
घणूं किसूं वाखाण घणै ।

सत्तह कला समाइ गयौ ससि
ऊजासहि आप आपणै ॥ १२ ॥

तुलि बैठौ तरणि, तेज-तम तुलिया,
भूप कणय तुलता भू भाति ।
दिनि-दिनि तिणि लघुता प्रामै दिन,
राति-राति तिणि गौरव राति ॥ १३ ॥

छवि नवी-नवी, नव-नवा महोछव,
मंडियै जिणि आणंद-मयी ।
कातिग घरि-घरि द्वारि कुमारी
थिर चीत्रति चित्राम थयी ॥ १४ ॥

शिशिर

मकरधुज-वाहण चढ्यौ अ-हिमकर,
उतर वाउ वाए अउर ।
कमल वालि विरहणी-वदन किय,
अंब पालि संजोगि-उर ॥ १५ ॥

पारधिया क्रिपण वयण दिखि पवणे
विण अंबह वालिया दण ।

लागे माघ लोग प्रति लागौ,
जल दाहक, सीतल जण ॥ १६ ॥

निय नाम सीत, जालै वण नीला,
जालौ नलणी थकी जलि ।
पातिक तिणि द्वारिका न पैसै
मंजियै विणु मन तणै मलि ॥ १७ ॥

वसंत

रवि बैठौ कलसि, थियौ पालर रितु,
ठरे जु द्रह किय हेम-ठंठ ।
ऊडण पंख समारि रहे अलि,
कंठ समारि रहे कलकंठ ॥ १८ ॥

बनि नयनि घरा-घरि तरि-तरि सरवरि
पुरुख-नारि-नासिका-पथि ।
वसंत जनमियौ देण वधाई
रमै वास चढि पवन-रथि ॥ १९ ॥

आयौ इल वसत, वधावण आयी
पोइणि-पत्र जल एणि परि ।

आणंदि वणे काच-मै अंगणि
भामणि मोतिए थाल भरि ॥ २० ॥

प्रज अंबुज सिसिर दुरीस पीढ़तौ
ऊतर ऊथापिया असंत ।
प्रसन थाउ मिलि न्याउ प्रवर्त्यौ
वनि वनि नयरे राज-वसंत ॥ २१ ॥

तसु रंग वास, तसु वास रंग तण,
कर पल्लव कोमल कुसुम ।
वणि वणि मालणि केसरि वीणति
भूली नख प्रतिबिंब भ्रम ॥ २२ ॥

वरखा जिम वरखति चातिग वंचित,
वंचि न को तिमि राज वसंत ।
फुल्ल पंखि क्रित सेव लवध फल,
वदि कोलाहल खग बोलंत ॥ २३ ॥

गुण गंध प्रहित गिलि गरल ऊगलित,
पवन वाद ए उभय पख ।
श्रीखंड सैल संजोग संजोगणि,
भणि विरहणी भुयंग-भख ॥ २४ ॥

रितु किहि दिवस सरस, राति किहि सरस,
किहि रस संध्या सुकवि कहंत ।
बे पख सूध ति बिहूं मास बे
वसंत ताइ सारिखौ वहंत ॥ २५ ॥

४. सेनापति

षट्-ऋतु-वर्णन

ग्रीष्म

ब्रग्र को तरनि तेज सहस किरनि करि
ज्वालनि के जाल बिकराल बरखतु है।
तचति धरनि, जग झरत झरनि, सीरी
छांह को पकरि पथी-पंछी बिरमतु है॥
सेनापति, नेक दुपहरी के ढरत होत
धमका बिखम, जो न पात खरकतु है।
मेरे जान पौनौ सीरी ठौर को पकरि कौनौ,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवतु है॥ १।

सेनापति, उवैं दिनकर के चलत लुवैं,
नदी-नद-कुवैं कोपि डारत सुखाइकै।
चलत पवन, मुरझात उपबन-बन,
लाग्यौ है तपन, डार्‌यो भूतल तचाइकै॥
भीखम तपत रितु ग्रीखम, सकुचि ना तें
सीकर चपत तहखाननि में जाइकै।

मानो सीतकाल सीतलता के जमाइबे को
राखे हैं बिरंचि बीज धरा में छिपाइकै ॥ २ ॥

सेनापति, तपन तपति उतपति तैसो,
छायो रतिपति, ता तें बिरह बरतु है ।
लुवन की लपटैं ते चहूँ ओर झपटैं यों,
ओढ़े सलिल-पटैं न चैन उपजतु है ॥
गगन गरद-धूंधि दसौ दिसा रही रूंधि,
मानो नभ भारु को भसम बरसतु है ॥
बरनि बतायी छिति-व्योम की ततार्ई, जेठ
आयो आततार्ई, पुटपाक सो करतु है ॥ ३ ॥

तपत है जेठ, जग जात है जरनि जर्‌यो,
ताप की तरनि मानो झरनि झरतु है ।
इतहि असाढ़ उठी नूतन सघन घटा,
सीतल समीर हिय धीरज धरतु है ॥
आधे अंग ज्वालनि के जाल विकराल, आधे
सीतल सुभग मोद ही-तल भरतु है ।
सेनापति, ग्रीखम तपति रितु भीखम है,
मानो बड़वानल सों बारिधि बरतु है ॥ ४ ॥

दामिनी दमक, सुरचाप की चमक, स्याम-
घटा की चमक अति घुरवान-घोर तें।
कोकिला कलापी कल कूजत हैं जित-तित,
सीतल है ही-तल समीर-झकझोर तें॥
सेनापति, आवन कह्यो हौ मन-भावन सो
लाग्यो तरसावन बिरह-जुर जोर तें।
आयो, सखि, सावन बिरह-सरसावन,
लग्यो है बरसावन सलिल चहुँ ओर तें॥ ५॥

दूरि जदुराई, सेनापति, सुखदायी, देखो,
आयी रितु पावस, न पायी प्रेम-पतियां।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी, सु
दरकी सुहागिन की छोह-भरी छतियां॥
आयी सुधि बर की, हिये में आनि खरकी,
सुमिरि प्रान-प्यारी वह प्रीतम की बतियां।
बीती औधि आवन की लाल मनभावन की,
डग भयीं बांवन की सावन की रतियां॥ ६॥

सेनापति, उनये नये जलद सावन के,
चारिहू दिसानि घुमरत भरे तोइ कै।

सोभा सरसाने, न बखाने जात केहूं भांति,
आने हैं पहार मानो काजर के ढोइ कै।
घन सों गगन छयो, तिमिर सघन भयो,
देखि न परतु मानो रबि गयो खोइ कै॥
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि,
मेरी जानि, याही तें रहतु हरि सोइ कै॥ ७॥

शरद्

खंड-खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
सेनापति, मानो शृंग फटिक-पहार कै।
अंबर अडंबर सों घुमड़ि-घुमड़ि छिन,
छिछकैं छछारैं छिति अछिन उछार के॥
सलिल सहल, मानो सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अघार के।
पूरब को भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग-गग गाजत गगन घन क्वांर के॥ ८॥

कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति, सेना-
पति, है सुहाति, सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे, मानो मोती अनगन हैं॥

उदित बिमल चंद, चांदनी छिटकि रही,
राम को सो जस अध-उरध गगन है।
तिमिर-हरन भयो, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर-मगन है॥ ६॥

हेमंत

सीत का प्रबल, सनापति, कोपि चढ़्यो दल,
निबल अनल, गयो सूर सियराइकै।
हिम के समीर तेई बरखैं बिषम तीर,
रही है गरम भौन-कोननि में जाइकै॥
धूम नैन बहैं, लोग होत हैं अचैन, तऊ
हिय सों लगाइ रहे नेकु सुलगाइकै।
मानो भीत जानि महा-सीत तें, पसारि पानि,
छतियां की छांह राख्यो पावक छपाइकै॥ १०॥

आयो, सखि, पूसौ, भूलि कंत सों न रूसौ, केलि
ही सों मन मूसौ, जीव ज्यों सुख लहतु है।
दिन की घटाई, रजनी की अघटाई, सीत-
ताई हू को सेनापति बरनि कहतु है॥
याही तें निदान प्रात बेगि उदै होत नाहिं,
द्रोपदी के चीर को सो रातु को महतु है।

मेरे जान सूरज पताल-तपतालै मांझ
सीत को सतायो कहलाइकै रहतु है ॥ ११ ॥

शिशिर

सिसिर तुखार के बुखार से उखारत है,
पूस बीते होत सून हाथ-पांइ ठिरिकै।
दीस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति, गायी कछु सोचिकै सुमिरिकै ॥
सीत तें सहसकर सहस-चरन ह्वैकै
ऐसे जात भजि, तम आवत है घिरिकै।
जो लौं कोक कोकी सों मिलत तौ लौं होत रात,
कोक अधबीच ही तें आवत है फिरिकै ॥ १२ ॥

सिसिर में ससि को सरूप पावै सवितहू,
घामहू में चांदनी की दुति दमकति है।
सेनापति, होत सीतलता है सहसगुनी,
रजनि की झांई बासर में झमकति है ॥
चाहत चकोर सूर ओर दृग-छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को,
ससि-संक पंकजनी फूलि न सकति है ॥ १३ ॥

वसंत

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग
स्यामरंग भेंटि, मानो मसि में मिलाये हैं।
तहां मधु-काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय-पवन उपबन-बन धाये हैं॥
सेनापति, माधव महीना में पलास तरु
देखि-देखि भाव कविता के मन आये हैं॥
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानो
बिरही-दहन काम क्वैला परचाये हैं॥ १४॥

केतकि, असोक, नव-चंपक, बकुल-कुल,
कौन धौं बिजोगिनि को ऐसो बिकराल है।
सेनापति, सांवरे की सुरति की सुरति की
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है॥
दच्छिन पवन एती ताहि की दवन, जऊ
सूनो है भवन, परदेस प्यारो लाल है।
लाल हैं प्रबाल फूले देखत बिसाल जऊ
फूले और साल पै रसाल उर साल है॥ १५॥

—

५. बिहारी

सतसई के दोहे

मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परे स्याम हरित दुति होइ ॥ १ ॥

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल ॥२॥

कब को टेरतु दीन रट, होत न, स्याम, सहाइ।
तुमहूँ लागी, जगत-गुरु, जग-नाइक, जग-बाइ ॥३॥

थोरैंई गुन रीझते, बिसरायी वह बानि।
तुमहूँ, कान्ह, मनौ भये आज-काल्हि के दानि ॥४॥

करी कुबत जगु, कुटिलता तजौं न, दीन-दयाल।
दुखी होउगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल ॥५॥

कौन भांति रहिहै बिरद, अब देखिबी मुरारि ?
बीधे मो सौं आइकै, गीधे गीधहिं तारि ॥६॥

ज्यौं हैहौं त्यौं होउंगो, हौं, हरि, अपनी चाल।
हठु न करौ, अति कठिन है मो तारिबो, गुपाल ॥७॥

तौ लगु या मन-सदन में हरि आवैं केहिं बाट ?
निपट जटे जौं लगि निपट खुलैं न कपट-कपाट ॥८॥

बैठि रही अति सघन-बन पैठि सदन-तन मांहि।
देखि दुपहरी जेठ की छांहौ चाहति छांहि ।६॥

नाहिं न ए पावक, प्रबल लुवैं चलैं चहुं पास।
मानहु बिरह बसंत के ग्रीखम लेत उसांस ॥१०।

पावस घन अंधियार महिं रह्यौ भेद नहिं आनु।
रात-द्यौस जान्यौ परतु लखि चकई-चकवानु ॥११॥

अरुन-सरोरुह कर-चरन, दृग खंजन, मुख चंद।
समै आइ सुंदरि-सरद काहि न करति अनंद ? ॥१२॥

आवत-जात न जानियतु, तेजहि तजि सियरानु।
घरहं जंवाई लौं घट्यौ खरौ पूस-दिन-मानु ॥१३॥

लगत सुभग सीतल किरन निसि-सुख दिन अवगाहि।
माह ससि-भ्रम सूर त्यौं रहति चकोरी चाहि ॥१४॥

चुवतु स्वेद मकरंद-कन तरु तर-तर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तैं थक्यौ बटोही बाइ ॥१५॥

लिखन बैठि जाकी सबी गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥१६॥

कहा कुसुम, कह कौमुदी, कितिक आरसी-जोति ?
जा की उजराई लखे आंखि ऊजरी होति ॥१७॥

वाहि लखे लोइन लगै कौन जुवति की जोति ?
जा कैं तन की छांह ढिग जोन्ह छांह सी होति ॥१८॥

सूर उदित हू मुदित मन मुख-सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुं ओर तें निहचल चखनु चकोर ॥१९॥

तूँ रहि, हौं ही सखि लखौं चढ़ि न अटा, बलि, बाल।
सबहिन बिन ही ससि-उदै दैहैं अरघ अकाल ॥ २०॥

बेसर मोती दुति झलक परी अधर पै आइ।
चूनो होइ न, चतुर तिय, क्यौं पट पोंछ्यौ जाइ ?॥२१॥

नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं, नंदित करी इहिं दिसि नंद-किसोर ॥२२॥

लटकि-लटकि लटकत चलत, डटत मुकुट की छांहि।
चटक-भरयौ नट मिलि गयौ अटक भटक बन मांहि ॥२३॥

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनु हंसै, दैन कहै, नटि जाइ ॥२४॥

चिरजीवौ जोरी. जुरै क्यौं न सनेह गंभीर।
को घटि ए बृषभानुजा वै हलधर के बीर ॥२५॥

इत उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन-हिये, दई, नई यह रीति ॥२६॥

त्यौं-त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ।
सगुन सलोने रूप की जु न चखे-तृखा बुझाइ ॥२७॥

इन दुखियां अंखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाहि।
देखत बनै न देखतैं, अनदेखैं अकुलाहिं ॥२८॥

कीन्हे हू कोरिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु?
भो मन मोहन-रूप मिलि पानी मैं कौ लौनु ॥२९॥

लाल, तिहारे रूप की कहौ, रीति यह कौन?
जा सौं लागत पलक दृग, लागत पलक पलौ न ॥३०॥

नैना नेकु न मानहीं, कितौ कह्यौ समुझाइ।
तन-मन हारेहू हंसै, तिन सौं कहा बसाइ ? ॥३१॥

चलत घैर घर-घर तऊ, घरी न घर ठहराति।
समुझि उहीं घर कौ चलै, भूलि उहीं घर जाति ॥३२॥

फिरि-फिरि बूझति है, कहा कह्यौ सांवरे-गात ?
कहा करत देखे कहां, अली चली क्यौं बात ? ॥३३॥

नेहु न, नैनन कौं कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर-भरे नित-प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ॥३४॥

पूस मास सुनि सखिन-मुख साईं चलत सवार।
लै कर बीन प्रबीन तिय गायौ राग मलार ॥३५॥

चलत-चलत लौं ले चले सब सुख संग लगाइ।
ग्रीखम-बासर सिसिर-निसि प्यौ मो पास बसाइ ॥३६॥

हौं ही बोरी बिरह-बस, कै बौरी सब गांउ ?
कहा जानि ए कहत हैं ससिहि सीतकर नांउ ॥३७॥

देखौं जागत, बैसियै सांकर लगी कपाट।
केत है आवत, जात भजि कौ जानै किहिं बाट ? ॥३८॥

बाम बांह फरकति मिलै जौं हरि जीवन-मूरि।
तौ तोही सौं भेंटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥३९॥

बिरह-बिपति दिनु परत ही तजे सबै सुख अंग।
रहि अबलौं व दुखौ भये चलाचलै जिय संग ॥४०॥

अंत मरेंगे, चलि जरैं चढ़ि पलास की डार।
फिरि न मरे मिलिहैं, अली, ए निरधूम अंगार ॥४१॥

बिकसित नवमल्ली-कुसुम निकसत परिमल पाइ।
परसि पजारति बिरहि-हिय बरसि रहे की बाइ ॥४२॥

धुवां होहिं न, अलि, उठैं धुवां धरनि चहुं कोद।
जारत आवत जगत कौं पावस-प्रथम-पयोद ॥४३॥

तिय तरसौंहैं मन किये, करि सरसौंहैं नेह।
धर-परसौंहैं ह्वै रहे झर-बरसौंहैं मेह ॥४४॥

बिरह-जरी लखि जीगननु कह्यौ न उहि केहि बार।
अरी, आउ भजि भीतरैं, बरसतु आजु अंगार ॥४५॥

पलनु प्रगटि, बरुनीनु बढ़ि, नहिं कपोल ठहरात।
अंसुवां परि छतियां छिनकु छनछनाइ छिपि जात ॥४६॥

नित संसौ, हंसौ बचत मानहुं इहि अनुमान।
बिरह-आगिनि लपटनि सकति झपटि न मीचु-सिचानु ॥४७॥

सीरैं जतननु सिसिर-रितु सहि बिरहिनि-तन-ताप।
बसिबैं कौं ग्रीखम दिननु परयौ परोसिन पाप ॥४८॥

औंघाई सीसी सुलखि बिरह-बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गो छींटो छुयौ न गात ॥४९॥

स्याम सुरति करि राधिका तकति तरुनिजा-तीरु।
अंसुवन करति तरौंस कौ खिनकु खरौंहौ नीरु ॥५०॥

गोपिन कैं अंसुवनि भरी, सदा असोस अपार।
डगर-डगर ने ह्वै रही अगर-बगर कै बार ॥५१॥

सुनत पथिक-मुँह माह-निसि लुवैं चलति उहिं गाम।
बिनु बूझैं बिनु ही कहैं जियति बिचारी बाम ॥५२॥

जौ वा के तन की दसा देख्यौ चाहतु आप।
तौ, बलि, नैंकु बिलोकियै चलि अचकां चुपचाप ॥५३॥

नेकु न झुरसी बिरह-जुर नेह-लता कुम्हिलात।
नितु-नितु होत हरी-हरी, खरी झालरति जाति ॥५४॥

अजौं न आये सहज रंग बिरह-दूबरे गात।
अबहीं कहा चलाइयति, ललन, चलन की बात? ॥५५॥

बाल-बेलि सूखी सुखद इहि रूखी रुख घाम।
फेरि डहडही कीजियै सुरस सींचि, घनस्याम ॥५६॥

लग्यौ सुमन, ह्वैहै सफल, आतप-रोस निवारि।
बारी, बारी आपनी सींचि सुहृदता-बारि ॥५७॥

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहीं बिकासु इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कवन हवाल! ॥५८॥

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल-सुरभि समीर।
मनु ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना कैं तीर ॥५९॥

जहां-जहां ठाढ़ौ लख्यौ स्याम सुभग सिरमोर।
उनहूं बिन छिन गहि रहत दृगनि अजहुं वहि ठौर ॥६०॥

गोधन, तू हरख्यौ हिये, घरि इक लेहु पुजाइ।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुन कै पाइ ॥६१॥

नाह गरजि नाहर-गरजि बोलु सुनायौ टेरि।
फंसी फौज में बदि बिच हंसी सबनु तनु हेरि ॥६२॥

अरे, परेखौ को करै, तुंही बिलोकि बिचारि।
किहिं नर, किहिं सर राखियै खरैं बढ़ैं परिपारि ॥६३॥

जा के एकाएक हू जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै-फलै आक डहडहौ होइ ॥६४॥

स्वारथ सुकृत न, स्रम वृथा, देखु, बिहंग बिचारि।
बाज पराये पानि पर तू पंछीनु न मारि ॥६५॥

मरत प्यास पिंजरा पर्‌यौ सुआ समै कैं फेर।
आदर दे-दे बोलियत बायस बलि की बेर ॥६६॥

को छूट्यौ यहि जाल परि कत, कुरंग, अकुलात।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यौ चहै, त्यों-त्यों अरुझत जात। ६७॥

जिन दिन देखे वे कुसुम गयी सो बीति बहार।
अब, अलि, रही गुलाब की अपत कटीली डार ॥६८॥

कर लै सूंघि सराहि कै सबै रहै गहि मौन।
गंधी अंध गुलाब को गंवई गाहक कौन ॥६९॥

करि फुलैल को आचमन मीठौ कहत सराहि।
रे गंधी मति-अंध, तू अतर दिखावत काहि ॥७०॥

को कहि सकै बड़ेनु सों लखे बड़ी हू भूल।
दीन्हे दई गुलाब की इन डारनि वे फूल ॥७०॥

गहिली, गरबु न कीजियै समै सुहागहि पाइ।
जिय की जीवनि जेठ सो माह न छांह सुहाइ ॥७१॥

गुनी गुनी सब के कहे निगुनी गुनी न होत।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तें अरक समान उदोत ॥७२॥

जनम जलधि, पानिप बिमल, भौ जग आधु अपार।
रहै गुनी है गल परयौ भलौ न मुकता-हार॥७३॥

नहिं पावस, रितुराज यह तजि, तरवर, चित भूल।
अपत भये बिनु पाइ है क्यौं नव दल फल फूल ॥७४॥

पटु पाखैं, भखु काँकरैं, सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत मैं एकै तुहीं बिहंग ॥७५॥

तंत्री-नाद, कबित्त-रस सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ॥७६॥

टिप्पणी

सूरदास

विनय

१— दिये – देने पर भी, कोई दे तब भी।

२— रवि-सुत – यम। अनत नहीं इ०— विषय-रस को छोड़ कर अन्यत्र चित्त नहीं रखा, विषय-रस में ही चित्त को रखा। मिति – सीमा। कमायौ – कमाई की, काम किया। कुचील – मलिन। अखित – संपूर्ण, खंडरहित।

३— बियो – दूसरा। जन – यह जन, मैं। काहू – किसी ने। गंवायौ – दूर किया। अपथ – कुपथ। चाहि – देखकर। उघटत – बारबार प्रकट करना। थकित – गतिहीन, स्थगित। अजित – जो जीती नहीं गयी हैं, जो वश में नहीं हैं। नटी – अर्थात बाजीगरनी, बंदर के खेल दिखानेवाली। जोइ इ०— जो-जो उसने कहा वह-वह मैंने किया। तजि पद-कूल – आपके चरण रूपी तट को छोड़ कर। बृक – भेड़िया। अंतक – यम। गिरारहित – गूँगा। कुटिल – इस कुटिल सेवक को।

४— सेंवर -- सेमल। खार -- खड्डा, गड्ढा।

५— अबिगत -- अज्ञेय, परमात्मा। सँचरै -- बुद्धि में आवे (या, बुद्धि वहाँ तक पहुंचे)। बागर -- बागड़, मरुस्थल।

६— रांकव -- रंक। रूपव -- रूपवती। जठर जरै -- बार-बार जन्म-मरण की ज्वाला में जलता है।

७— इस पद में अनेक आदर्श प्रेमियों का उल्लेख किया गया है। मोद न मानै ताप -- सुख-दुख की पर्वाह नहीं करता। कमल इ०— पर कमल में अपनें को बँधा देता है (प्रेम के कारण)। परिमिति -- मर्यादा। पारि -- डाल। चितवन पारि -- देख। परनि -- नीचे गिरना। परेवा -- कबूतर। पछमनों -- पीछे। जरनि -- जलना, सती होना। प्रेत -- मृतक। सँघाती -- साथी। एकहु आंक -- दृढ़ निश्चय से, (या, तनिक भी)।

८— कन -- अन्न-कण। तुस -- भूसी। जट जूटै -- जटाजूट रखने से। उरध धूम के घूटे -- योगी बनकर धुँआ पीने (या, प्राणायाम) से। जग सोभा की -- जगत में शोभा (या वाहवाही) प्राप्त करने की। खूटै -- काम सिद्ध होता है। टूटै -- झपटता है। झर -- ज्वाला। ज्ञान -- ज्ञानाग्नि प्रज्ज्वलित हो।

१— हरि-सौरभ -- कस्तूरी। तसकर -- चोर, लुटेरा। अखि -- प्रतिबिंब देख कर और उसे दूसरा हाथी समझ कर। अरथो -- अड़ा, भिड़ा। मरकट -- बंदर (बाजीगर का)। मरकट इ०— बंदर को पकड़ने के लिए तंग मुँह का घड़ा जमीन में गाड़ देते हैं और उसमें अन्न रख देते हैं। बंदर आता है, अन्न लेने के लिए हाथ घड़े में डालता है और अन्न से मुट्ठी भर हाथ को बाहर निकालना चाहता है पर मुट्ठी भरी हुई होने के कारण घड़े के तंग मुंह से बाहर नहीं निकल पाती। अब बंदर न तो अन्न छोड़ता है न हाथ निकाल सकता है। वह अज्ञान-वश समझता है कि घड़े के अंदर किसी ने उसकी मुट्ठी को पकड़ रखा है। नलनी के सुवटा—नली का सुग्गा, सुग्गे को फाँसने के लिये बहेलिया जमीन में दो खूँटियां गाड़ देता है और पतली लकड़ी, या तार, या डोरी में एक नली पहना कर उसके दोनों सिरे खूंटियों से कस कर बांध देता है। नीचे कुछ दाने छिटका देता है। सुग्गा दाने चुगने आता है और स्वभावतः ही ऊँचा बैठना चाहता है। नली पर बैठ कर वह ज्योंही दाने चुगने को झुकता है त्योंही नली घूम जाती और सुग्गा उल्टा लटक जाता है। नली को वह पंजों से पकड़े रहता है। यदि छोड़ दे तो छूट सकता

है पर भ्रमवश यह समझता है कि नली ने मुझे पकड़ रक्खा है। कौनें पकर्‌यौ -- अर्थात किसी ने नहीं पकड़ा है, अज्ञान से अपने को पकड़ा हुआ समझता है।

१०—सबद -- उपदेश। भुलायो -- भूला हुआ। चिनयो -- देखा। चिह्नायो -- पहचान लिया। हिरायो -- खो गया। समुझे की इ०— जो अपने आप को पहचान लेता है, आत्मज्ञान कर लेता है, उसकी अवस्था ऐसी हो जाती है कि ज्ञान के आनंद से मन ही मन आनंदित होता रहता है।

११—गुरु-मुख – गुरु से दीक्षित, गुरु की बात मानने वाला। का पै इ०— किस से सेवा करवावें। छानि – छप्पर। तिया – विदुर-पत्नी। कहत इ०— मुख से भोजन की बड़ाई करते हैं।

१२—हम तें इ०— दुर्योधन का कथन। दूं इ०— कृष्ण का उत्तर। विपरीत – कठिन समस्या।

१३—दूरि धर्‌यो -- दूर रक्खा हुआ, संग्रह किया हुआ, छिपा कर अलग रक्खा हुआ। खोलै – बाहर निकाले। पीत-पटोलै -- पीतांबर से। पटोल = पट्टकूल। ओलै - आड़ में, सहारे।

वात्सल्य

१— ठहर -- जगह। बंदवारें -- बंदनवारें। जोइ-सोइ -- सभी कोई। अंकुरित -- अंकुरित होकर। पाछले पहर के -- पूर्व जन्म के (या वृद्धावस्था के)। मनोज -- मनोरथ। खेद -- कष्ट।

२— सरनी -- धारा, राशि। तरनी -- नौका, पार उतारने वाला।

३— परेख्यो -- देखा। माख -- अमर्ष। खायें -- खाता है। वा सुत को इ०— उस बालक को गोद में लिये नंद का प्रतिबिंब देखा। छवि -- प्रतिबिंब।

४— कजरी -- काली गाय। बनी -- चोटी। बैस -- उम्र। लढ़ै -- दुलारा। अचवत -- पीते समय। डढ़ै -- जलता है। टकटोरत -- टटोलते हैं। रढ़ै -- कहती है। उर इ०— हृदय से नहीं निकलता, नहीं भुलाया जाता।

५— नाम लै -- मेरा नाम लेकर (पांडे भगवान को बुलाते हैं और कृष्ण भगवान हैं)।

६— मेल्यो -- डाला। देखौं इ०— जरा देवता की महिमा (शक्ति) को तो देखूँ यह विचार कर। घाले इ०— सब नष्ट कर डाला। सिला -- शालिग्राम।

७— आन – तोड़ कर। पानी – हाथ से।

८— ढीलन – खोल देता है। बहीं – भटकती।

९— बसीवट – वह बट जहां कृष्ण बंशी बजाते थे, वन में। बंहियन – बाँहों का। उपज है – उत्पन्न हो रहा है। जानि इ०— मानो मैं पराया बेटा हूँ।

१०— सखा को – सखा की तरफ। कालीदह – हद में जहां कालिय नाग रहता था। और सखा – दूसरे सखा की तरह।

१२— जहाँ करी – जहां मैंने धूर्तता की वहां तो तुम देख नहीं सके। तुमहूं सरि – तुम्हारे बराबर। ऐसे गये बिलाई – हम तो ऐसे बिला गये हैं, तुच्छ हो गये हैं। सतर होत – क्रोध करते हो। कमल देहु इ०— कंस ने कृष्ण को मारने के लिए नंद को कालीदह के कंमल भिजवाने के लिए लिखा था। वे अभी तक भेजे नहीं गये थे। श्रीदामा तानें के साथ उसी का उल्लेख करता है।

१३— भहराई – एकाएक, सहसा।

१४— दोष मिटाइ – बीक के असगुन की शांति करके। इति = इहि।

२०— सांति – शान्ति। धरिहौ – धारण करोगे। फिरि हौ – फिरोगे। हो – हे। वार-यो -- न्यौछावर किया। उपजावत -- उपजें लेते हैं। उपजें लेना – राग की सुंदरता के लिये उसकी बँधी तानों के अतिरिक्त अपनी ओर से नयी तानें लेना। अनाघात -- एक ताल (भाषा-शब्दकोष)। कियो सैन -- शयन किया, स्थिर हो गया। आयसु दियो -- आज्ञा दी, बिदा किये।

यशोदा - विलाप

१— सुफलक-सुत -- अक्रूर।

२— बूझै – पूछती है (कृष्ण को मथुरा में छोड़ कर आये हुए नंद से)। चारों – दो ऊपर की, दो हृदय की।

३— मंदिर -- घर-को। अहथौ – साँप ही। निबहथौ हुतौ – निभ गया होता, सफल हो गया होता।

४— भांड़े भरति – पछताती है। रिसनि इ०— क्रोध के मारे जो मन में आया सो कह डालती थी। बृथा करे – व्यर्थ ही। मो मन – मेरे मन में। अरति – हठ करती है।

५— लोगन इ०— लोगों के कहने से। फेरि इ०— लौटा-लौटा कर व्रज में ही गाड़ रखा, जाने नहीं दिया। भाइ – भाव, प्रकार।

६— नेति -- मथने की रस्सी। गहै -- पहुंचते थे। कौड़ी इ०— कौड़ी मूल्य भी नहीं। ७— अन्याय – अनीति, शरारत। ऊतर – (अन्यत्र कहीं जाने के) बहाने, अन्यत्र कहीं जाते हुए। पहुनई-सूतर – पहुनाई के सूत्र से ही, पाहुना बन कर ही। ८— इतनी – इतनी सी दूर, अर्थात निकट ही। खरिक -- बाड़ा। जगदीस – कृष्ण।

गोपी - विरह

१— धाये -- दौड़ते आ रहे हो। २— बरु -- बल्कि। अवधि -- आने का समय। पराये -- दूसरे के, अर्थात इन्द्र के। साजे इ०— गहरे वन में घोंसले बनाये। सिंचि -- भीग कर। समुझत – समझ में नहीं आती, याद नहीं पड़ती। मधुबन – मथुरा में अर्थात निकट ही। ३— भरिहैं -- बितावेंगी। निसिहिं -- जिन में रात भर सांस नहीं पातीं। घमंड -- घटा। मदन इ०— जिन में काम धनुष लेकर दौड़ता है। कुसुम -- कुसुंभी रंग की। झुंडनि -- झुंड बना कर (जिन में सखियां झुंड बाँध कर गाती हैं ऐसे सावन के दिन)। निघटत – बीते। त्रिगुन -- एक रात्रि तीस रात्रियों के बराबर हो जाती है (रावण के सिर = १० उनको तिगुना किया = ३०)। ५— अलि-सत -- भौंरा। जैलसुत -- कमल। संपुट -- बंद कोष।

सनमुख – सामने, छाती पर। कह्यौ – बात की। ६— जनावत – हृदय में सच्चा प्रेम नहीं, लोकलज्जा के कारण प्रेम का दिखावा करते हैं। ७— रुचि – शोभा। क्यों तुम को इ०— कहो, तुम्हारी कमल से ही क्यों बनती है और अन्य सब फूलों का अनादर क्यों करते हो। (अथवा, अनरे – अनभावने)। मृग-अकहि – चद्रमा को। जंबू – जामुन। अंब – आम। मुकता इ०— हंस के प्राण मोतियों में ही रहते हैं इसलिए वह अभी तक उन्हें चुगता है, छोड़ नहीं देता है। निघटत – घटने पर (जल के)। ८— बिलग – बुरा। भँवारे – भटकने वाला। मनियारे–सुंदर। ९— दै आदि – इत्यादि। पत्र-बसन – पत्र रूपी वस्त्र। बिरह – बिरह में। १०— बिभावरी – प्रकाशित, शोभित, सुखी। (या, पाठांतर भांवरी = फेरा करना, लौट कर आना)। चितवत – देखते हुए। झांवरी – धुँधली। साँवरी – काली पड़ी हुई। लाज इ०— यदि लज्जा न होती तो हमीं वहाँ चली जातीं। आवै बिरह-ताव – बिरह-ज्वर आता है। रावरी – तुम्हारी।

विशेष अध्ययन के लिए

१ सूरसागर (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)।

२ मिश्रबंधु— सूर-सुधा (ना. प्र. सभा, काशी)

३ वेणीप्रसाद—संक्षिप्त सूरसागर (इंडियन प्रस, प्रयाग)
४ नंददुलारे वाजपेयी—सूर-संदर्भ (इंडियन प्रेस, प्रयाग)
५ रामचन्द्र शुक्ल—भ्रमर गीतसार
(हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस)
६ नरोत्तमदास स्वामी—सूर-साहित्य-सुधा
(नवयुग ग्रंथ कुटीर, बीकानेर)
७ नरोत्तमदास स्वामी—सूरदास (हिंदीभवन, लाहौर)
८ हजारीप्रसाद द्विवेदी—सूर साहित्य
९ रामरतन भटनागर—सूर साहित्य की भूमिका
१० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिंदी साहित्य की भूमिका

तुलसीदास

केवट-प्रसंग

। बाट परइ – रास्ता बंद हो जायगा। कबारू – धंधा। तन – ओर। करखी – खींच ली, बुद्धि मोह से ग्रस्त हो गयी। सिहाहीं – ईर्ष्या करते हैं, ईर्ष्या युक्त होकर प्रशंसा करते हैं। दावा – दवाग्नि, अग्नि।

भरत का चित्रकूट-गमन

२— असन – भोजन। एक – कुछ, कई एक। जुझार – योधा। ३— गुह – निषाद का नाम। ग्याति – ज्ञाति, जाति वाले। सन – से। हथबासहु इ०— हथिया लो, कब्जे में करलो और फिर डुबा दो। (अथवा– पतवारों सहित नावों को डुबा दो)। घाटारोहु – घाट का अवरोध। संजोइल – तय्यार, सुसज्जित। ठाटहु – सजाओ। ठाट – साज। धवलिहहुं – उज्ज्वल कर दूंगा। संजोऊ – संजोग, तय्यारी। रजाइ – आज्ञा। करखा – जोश। ४— धोख जनि – भूल न करना, चूकना नहीं। खेत – रणक्षेत्र। जानि बिनु – समझे बिना।

५— मध्य – उदासीन, तटस्थ। मांगे – मगाये। पाठीन – एक मछली। सींचा -स्नान। करम -नासु – बिहार की एक नदी। उलटा नाम – राम का उलटा अर्थात मरा। ७— जमन–यवन। ६— सनकारे – इशारा किया। लागू – सहारा। मिने = मिले। सोधु – खबर। पटतर – उपमा। करतल – अर्थात् सहज प्राप्य। १२— पतिदेवता – पतिव्रता। पबि – वज्र। तांति वाउ – गर्म हवा। सेखा – शेष। डासि – बिछा कर। जोगवइ – सार-संभाल करते। साइ – स्वामी। बादि – वृथा। निरजोसु – निचोड़, निश्चित सिद्धान्त, निर्णय, (अथवा, निर्दोष)। तेहि राति – उस रात में जब राम वहां ठहरे थे। तुम इ०— राम को तुम सा प्यारा कोई नहीं है। सौंहैं – शपथें। खोरि – दोष। निकामा – बहुत। भिनुसार – प्रातःकाल। गुदारा – खेवा, पार उतरना। कोतल – घोड़े। डोरिआये – नौकर लगाम पकड़े हुए। सिर-भर – सिर के बल। झलका – छाला। हिलोरे – लहरें। निज – अर्थात् क्षत्रिय का। साहिब – स्वामी। रटनि – पुकारना। घटि जाई – बात घट जायगी। बान – रंग।

कवितावली

१— कीर के कागर – सुग्गे के पुराने पंख जो झड़ जाते हैं। नृप-चीर-बिभूषन – राजसी वस्त्राभूषण (हम के आगे

तजि (= त्यागकर) क्रिया का अध्याहा कीजिये) । कीर के इ०—श्रीराम ने राजसी वस्त्राभूषणों को त्यागकर शरीर में ऐसी उपमा पायी जैसी सुग्गा अपने पुराने पंखों को त्याग कर पाता है । व्यंग्यार्थ यह कि जिस प्रकार सुग्गे को पुराने पख त्यागते हुए दुःख नहीं होता इसी प्रकार राम को भी राजसी वस्त्राभूषण त्यागते हुए बिलकुल दुःख नहीं हुआ । बटाऊ--यात्री, पथिक जिसे मार्ग के निवासस्थान को त्यागते हुए कुछ भी दुःख नहीं होता ।

१— भरि भाल — सारे ललाट पर । कनी — बूँदें । ३—परिखौ–प्रतीक्षा करो । भूभुरि डाढे–गर्म रेत से जले हुए । ४—तटिनी—नदी (गंगा) । खे—उसी । ५—बन-वाहन—जल की सवारी, नाव । जल इ० — पानी खा रहा है, पानी में भीगता रहा है जिस से और भी कोमल हो गया है । हहा — ठठाकार । ६—तपी—तपस्वी । रसना–जिह्वा । ७–बालधी–पूँछ । व्योम – बीथिका — आकाश–मार्ग में । सरि— नदी । ८—तौसियत–गर्मी से जल रहे हैं । झौसियत–झुलस रहे हैं । झारहीं—ज्वाला से, लपट से । ९—बीथिका—गली । पंबरि–पौरी, द्वार । पगार—भीत । बानर बिलोकियै – हनुमान दीख पड़ते हैं । अध–ऊर्ध–नीचे और ऊपर । बिदिसि – उपदिशा ।

तिलोकिये—तीनों ही लोकों में। और इ०—कोई और उपाय क्या करे? सिखाओ—सीख। १०—सुर-दावन—देवताओं का दमन करने वाला, रावण। बिरुझे—युद्ध में उलझे। बिरुदैत-यशस्वी। उपरी-उपरा—प्रति-द्वंद्विता। ११—पंवारत—फेंकते हैं। खंड—टुकड़े। महीधर—पहाड़। खग्ग—खड्ग। खगे—धसे। खपुवा—कायर। खरके—खिसक गये। झर के—झड़कर, टूटकर। १२—मृगराज के साज—सिंह के समान। सौंह—शपथ। मारुत को—पवन का (पुत्र), हनुमान। कालहु इ०—काल को भी काल सा जान पड़ता है। १३—बिलास = विसाल। रन-रौर युद्ध में भयंकर। फंग—फंदे में। लूम—पूँछ। चलाये—फेंक दिये। भ्रम-बात—बगूला। १४—पूसन-पूषा, सूर्य। सांवत—सामन्तपना राक्षसों की अधीनता। १५—लोकप—लोकपति, दिग्पाल। सुर-मौर—भगवान। ताको—उनका (सेवक)। कूकुर कौर—कुत्ते को मिलने वाले टुकड़े। जीह—जीह्वा। टि०—अन्तिम चरण में स्वाभाविक अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है।

गीतावली

१—बिलंबत—ठहर जाते हैं। बरनत—प्रशंसा करते हैं। नटत—नाचने लगते हैं। ब्रजबधू अहीर—मार्ग के गांवों के गोप-गोपी जन। २—यहै इ०—यही अंतिम भेंट है, बलिहारी जाता

हूँ, मुझ से मिललो। जहां -- यह शब्द निकाल दीजिये। मुरछित इ० -- राजा ऐसे मूर्छित हुये कि फिर नहीं जागे। करम इ० -- मानो भाग्य रूपी डाकू राजा -- रूपी यात्री को मारकर उनका राम रूपी रत्न लेकर भाग गया। लोग इ० -- लोग रूपी कमल। अवध सर -- अयोध्या रूपी सरोवर में। हिम -- पाला, जाड़ा। ३ -- बिनु छर -- बिना छल के छले गये। निकाई-अधिकाई -- सुन्दरता की अधिकता। बिथकित -- वचन शिथिल होगये। बिय-दोनों। नेत्र रूपी सरोवर राम की शोभा रूपी अमृत से भर गये। निफन -- चतुरता या सावधानी के साथ। कहा कीबे -- क्या करना चाहिये। पैंत -- बाजी। निसरिगे -- भूल गये। समउ -- समय। ४ -- बूझि -- बूझी, पूछा ५ -- चरन-पीठ -- पादुका। ६ -- पति -- स्वामी अर्थात राम। हित -- प्रेम। हेतु -- प्रेम। बारे -- बचपन। संग लगी -- साथ हो ली। ह्यां इ० -- यहां क्या बिगड़ रहा था। मरिबोइ -- मृत्यु रूपी मुर्दे को जला डाला, मर भी नहीं पाती। करिबे कहं -- बनाने के लिए। लह्यो -- पागया। ७ -- आये हैं = आये वे हैं (पूछ तो सही, वे पथिक कहाँ से आये हैं)। निज इ० -- ये बरस विधाता अपने दिनों के हिसाब से पूरा करेगा (ब्रह्मा का एक दिन मनुष्यों के ४ अरब बरसों के लगभग होता है)। क्वै इ० -- मेरे किये कौन से कठिन कर्म हैं कि। स्वैहैं -- सोवेंगे। सालभंजिक -- मूर्ति (या, वज्र को,

छेद करने वाली, वज्र से भी कठोर)। १२—फुरि = सच्ची। अवधि = आने की अवधि। १३—मुह भरि = पूरी। गंठ—गांठ, दुख। लसन = लखन = लक्ष्मण। चखन = चख न।

विनयपत्रिका

१—दिन—प्रतिदिन। भानी—तोड़ दी। घरबात—बात। सिहानी—ईर्ष्या करने लगीं। नाक सवारत—उनके लिये स्वर्ग तैयार करते करते। हौं आयो नकवानी—मेरे नाकों दम आ गया। अधिकार—ओहदा। जगत मातु—जगदंबा, पार्वती। २—रविकर जल—मृगतृष्णा का जल। भाव—प्रेम। हटकि—बरज कर, दूर रखकर। करन—कान। जातरूप—सोना। ३—सहज—आत्मा का स्वाभाविक सुख। भार—समूह। अति—पूरा। ५—सिराने—बीत गये। विराने—पराये। सूखत इ०—उनकी प्रसंशा गाते मुँह सूखता है, प्रसंशा करता नहीं थकता। पिराने—दुखने लगे। थिराने—स्थिर हुए, स्थिर होकर निर्मल हुए या सुखी हुए। ६—परसत इ०—परोसते हुए सामने से पत्तल हटाते हो। निदेस इ०—आज्ञा से बाहर। गारो—गौरव। रोस इ०—सब के साथ 'तजि' क्रिया लगेगी। अछत—होते हुए। ७—मद—कस्तूरी। ताहि—उस सरोवर को। यहि बिधि—विषयों की मृगतृष्णा के जल से।

८ —ओर को इ० – परले सिरे का बिगड़ा हुआ। बिगरो इ०–बिगड़कर अब और क्या बिगड़ेगा। संग्रहे – अपनाने से। पीर होत इ० – पीड़ा होने पर भी प्रेम करते हैं। ६—अनेरो–बुरा, निकम्मा। तिजरा इ०—तिजारे के टोटके के समान। ओचट इ०—(मेरी ओर) अचानक, भूलकर भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। बेद-बाहिरो - वेद के विरुद्ध, शास्त्रानुकूल नहीं चलनेवाला। देवन्हि – देवताओं ने भी। देव – हे देव। नाम की – आपके नाम की। पै—अवश्य ही। जगत इ० – यह बात जगत में फैल गयी है कि मैं आप का चेरा हूं; अब अपने लिए समझ लीजिये कि लोक को बड़ा मानेंगे या शास्त्रों को; लोक मुझे आपका कहता है, शास्त्रों के अनुसार मैं आपका नहीं; आप किस को मानेंगे इस का स्वयं निर्णय कर लीजिये। (साधारण तया कानून की अपेक्षा लोकरीति (Custom) को ही प्रधानता दी जाती है) भलेरो – भला (एरा स्वार्थवाचक प्रत्यय है जो राजस्थानी में बहुत आता है; मिलाओ – बड़ेरा, घनेरा बहुतेरा)। सबेरो – शीघ्र।

विशेष अध्ययन के लिए

१–रामचन्द्र शुक्ल–गोस्वामी तुलसीदास (ना० प्र० सभा)
२–श्यामसुन्दरदास–गोस्वामी तुलसीदास (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)

३— श्यामसुंदरदास— तुलसीदास (इंडियन प्रेस, प्रयाग)
४— कल्याण का मानसांक— (कल्याण कार्यालय, गोरखपुर)
५— रामचरितमानस— (गीता प्रेस, गोरखपुर)
६— शीतलासहाय— मानसपीयूष टीका (गीता प्रेस, गोरखपुर)
७— विश्वनाथप्रसाद— कवितावली टीका
८— मुनिलाल— गीतावली टीका (गीता प्रेस, गोरखपुर)
९— वियोगी हरि— विनय-पत्रिका टीका (हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस)
१०— माताप्रसाद— तुलसीदास (हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग)

पृथ्वीराज राठौड़

ऋतुवर्णन

१— तब, ग्रीष्म आने पर, नदी और दिन घटने लगे, सरोवर का जल और रात बढ़ने लगी, सजल पृथ्वी कठोर हो चली, हिमालय द्रव हो गया, पेड़ों ने अपनी छाया जगत के सिर पर दी और सूर्य ने जगत के सिर पर मार्ग बनाया।

नदि वधै इ०— पहाड़ की बर्फ पिघलने से। दीह – दिन। गाढ़ – पानी सूखने से कठोर। द्रव – बर्फ पिघलने से। तदि -- तब, ग्रीष्म आने पर। सूर इ०— ग्रीष्म में सूर्य आकाश में सिर के ऊपर आ जाता है।

२— (इस ग्रीष्म में) लोग व्याकुल हो गये तो कैसा आश्चर्य ? छाया वांछनीय हो गयी तो यह उचित ही है। देखो, ग्रीष्म से व्याकुल होकर सूर्य ने भी शीतल हिमालय की दिशा (उत्तर दिशा) की शरण ले ली, सूर्य ने भी त्रिख का आश्रय लिया।

भ्या - हुए। केहवो - कैसा। वंछित - अभीष्ट। अ - यह। विहित - उचित। लीधो - लिया। हेम दिसि - ग्रीष्म में सूर्य उत्तर दिशा में आ जाता है। ही - भी। त्रिख - (१) वृक्ष (२) वृषराशि (सूर्य के वृषराशि में आने पर ग्रीष्म आरंभ होता है। आसरित - आश्रित।

३— मृगशिरा नक्षत्र के पवन ने चल कर हरिणों को दीन बना दिया। रेत की ऐसी आंधी उठी जो आकाश से जा लगी। पर आर्द्रा नक्षत्र ने बरस कर भूमि को आर्द्र कर दिया जिससे किसान उद्यम में लगे और गड्ढे भर गये।

ऊपड़ी - उठी। धुड़ीरव - धूल की आंधी (या, बगूला)। खेतिए - किसानों में। ऊजम - उद्यम। खाद्र - खड्डे। म्रिगसिर - मृगशिरा नक्षत्र का पवन, वह तेज पवन जो उस समय चलता है जब सूर्य मृगशिरा नक्षत्र में होता है—(जून के दूसरे-तीसरे सप्ताह में)। वाइ - पवन चल कर। किंकर - दीन, किंकर्तव्यविमूढ़।

४— वर्षाऋतु में बगुले, ऋषि और राजा एक स्थान में टिक गये, देवता सो गये, मोर का शब्द होने लगा; चातक पुकारने लगे, बादल दौड़ने लगे, तथा इन्द्र आकाश को सजाने लगा।

थिउ – हुआ। बलाकी – बलाहक। हरि – इन्द्र। अंबहर – अंबर। रिखि इ०— साधु फिरना छोड़ कर चतुर्मास करने लगे। राजान इ०— राजाओं ने विजय-यात्राएं बंद कर दीं।

५— उजली कोरों वाली काली घटाएँ लेकर सावन मूसलाधार बरसने लगा। दसों दिशाओं में बादल पिघल चले। वे बरसते हुए बंद हो नहीं होते मानो विरहिणी के नेत्र बन गये हों।

करि – बना कर। कांठलि – घटा। कोरण – गोट, कोर। धारे – धाराओं से, मूसलाधार। जलग्रभ – बादल। थंभि – ठहरते हैं, रुकते हैं। थिया – हुए।

६— दड़दड़ शब्द के साथ पानी के बरसते समय पहाड़ी नाले शब्द करने लगे। बादल गहरे शब्द से गरज उठा पानी इतना बरसता है कि समुद्र में भी नहीं समाता; बिजली ऐसी चमकती है कि बादल में नहीं समाती।

दड़ड़ – दड़दड़ शब्द के साथ। वाजियौ – बजा, शब्द किया। गुहिर – गभीर। सदि – शब्द से। जल-बला – बिजली।

७— पेड़ और लताएँ पत्तों से युक्त हो गये, तृण अंकुरित हो गये। पृथ्वी हरी-भरी हो गयी मानो उसने नीली साड़ी

पहनली हो। पृथ्वी ने नदियों के हार पहने और पहने पैरों में दादुर रूपी नूपुर।

नीलाणी – हरी हो गयी। नीलंबर – नीला वस्त्र। न्याइ – समान।

८ — काले और श्वेत बादल पानी बरसाते हैं। जिनके छज्जों से मेघ रगड़ खाते हैं ऐसे पीले और कई लाल महलों में महाराजा (श्रीकृष्ण) विराजते हैं।

जल-जाल – बादल। पीला – पीले। हेक – एक। राता – लाल। पहल – दूसरे। ऊधरता – छज्जों से रगड़ खाते हुए (?); अधर आकाश में दौड़ते हुए (?)।

९ — आसोज के बीतने पर बादल आकाश में लीन हो गये, कीचड़ पृथ्वी में लुप्त हो गया, पानी में गदलापन विलीन हो गया। जिस प्रकार सतगुरु के द्वारा ज्ञानाग्नि की दीप्ति के प्रगट होने पर लोगों के कलियुग-संबंधी पाप विलीन हो जाते हैं।

मिले – विलीन हो गये। गुडलपण – मलिनता। जग तणा – लोगों के

१० — गायें दूध देने लगीं, पृथ्वी रस उगलने लगी, सरोवरों में कमलिनी की सुंदर शोभा हो गयी। शरद ऋतु आयी

जिसमें स्वर्गलोक-वासी पितरों को भी मृत्युलोक प्यारा लगता है।

सग – स्वर्ग। प्री – प्रिय।

११— विरह को दूर रखने के लिये दोनों बारबार बोलते हैं। शरद की रात्रि ऐसी श्वेत है कि हंसनी पास में बैठे हंस को नहीं देख पाती और हंस पास में बैठी हंसनी को नहीं देख पाता।

मुहरमुह -- बारबार। गमै – गंवाते हैं। वे -- दोनों। तणी -- की।

१२— उजियाली रात में श्वेत वस्तुएँ अदृश्य हो गयीं। अधिक कहने से क्या विशेष लाभ ? स्वयं चंद्र अपनी सोलह कलाओं के साथ अपने ही प्रकाश में समा गया।

१३— सूर्य तुला राशि में बैठा। प्रकाश और अंधकार (दिन और रात) तुल गये अर्थात् बराबर हो गये। पृथ्वी पर स्वर्ण के तुलादान करते हुए राजा स्वर्ण के बराबर तुलते शोभित हो रहे हैं। अतः दिन प्रतिदिन छोटे होने लगे और रात प्रतिरात बढ़ने लगी।

कणय – कनक। तिणि – अतः। प्रामै – पाते हैं। गौरव -- बड़ापन।

१४— जिसमें नयी नयी शोभा और नये नये उत्सव आनंद के साथ मनाये जाते हैं ऐसे कार्तिक मास में घर घर में कुमारियां द्वारों पर निश्चल होकर चित्र बनाती हुई स्वयं चित्र बन गयीं।

थिर – स्थिर। निश्चल – एकाग्र। चीन्हति – चित्र बनाती। चित्राम – चित्र। थयी – हुई। चित्राम थयी – चित्र की भांति निश्चल तथा चित्र की तरह ही सुंदर।

१५— सूर्य कामदेव के वाहन पर, मकर राशि में, जा चढ़ा और उत्तरी पवन ने चल कर कमलों को जला कर विरहिणी के मुख के समान (म्लान) बना दिया और आमों को पाल कर संयोगिनी के हृदय की भांति प्रफुल्लित कर दिया। अउर – और।

१६— मांगे जाने पर कृपण के मुँह से निकलने वाले वचन (उत्तर) की दिशा से चलने वाले पवन ने आम को छोड़ कर सारे वनों को जला दिया। माघ मास के लगते ही लोगों को जल दाहक (कष्टकारी) और अग्नि शीतल (सुखकारी, सुहावना) लगने लगा।

पारथिया – मांगा हुआ। कृपण वचन इ०— मांगने पर कृपण

के मुँह से 'उत्तर' (जवाब, इंकार) निकलता है। विण – बिना, छोड़ कर। प्रति – को।

१७— अपना नाम शीत जाड़ा होने पर भी वह हरे-भरे वनों को जला देता है; जल में स्थित हुई कमलिनी को भी जला देता है। इस पाप के कारण वह मन के मैल को धोये बिना द्वारका में प्रवेश नहीं कर सकता। (भाव यह कि द्वारका में शीत की बाधा नहीं होती)।

निय – निज। नीला – हरे थकी – स्थित। मंजियै – धुले। विणु – बिना। तणै – के। मलि – मैल के।

१८— सूर्य कुंभ राशि में बैठा: ऋतु पलट गयी, जाड़े के घोर शीत से मारे हुए वृक्ष डहडहे हो उठे। भौंरे उड़ने के लिये पांखें संवारने लगे और कोयलें (गाने के लिए) कंठ संवारने लगीं

कलसि – कुंभ अर्थात् कुंभराशि में। थिया – हुआ। पात – परिवर्तित। ठरे – शीत से ठंडे हुए। डहकिय – डहडहे हुए। हेम – शीत ऋतु। ठंठ – घोर ठंड। ऊडण – उड़ने को। समारि रहे – संवारने लगे।

१९— वसंत ने जन्म लिया सबको इसकी बधाई देने के लिए

सुगंध पवन के रथ पर चढ़ कर वनों में, नगरों में, घर-घर में, पेड़-पेड़ में और सरोवरों में, पुरुषों और स्त्रियों की नासिका रूपी मार्ग में फिर रहा है।

देण – देने को। रमै – फिरता है।

२०— (चमकते हुए जल वाले सरोवर में) कमलिनी के पत्तों पर जलकण इस भांति दिखायी पड़ते हैं मानो वसंत के पृथ्वी पर आने पर भामिनी आनंद से सजी हुई, कांच के बने आंगन में, मोतियों से थाल भर कर, बधाने के लिए खड़ी हो।

इलि – इला अर्थात् पृथ्वी पर। वधाइण – अभिनंदन करने को। पोइणि – पद्मिनी। जल – जलकण। णिय परि – इस भांति। वणे – बन कर, सज कर। मै – मय। मोतिए – मोती से।

२१— कमल रूपी प्रजा को पीड़ा देते हुए दुष्ट राजा शिशिर को तथा दुष्ट उत्तरी पवन को पद से हटा दिया। ऋतुराज वसंत ने प्रत्येक वन रूपी नगर में शीतल पवन के बहाने न्याय की स्थापना की।

दुरीस – दुष्ट राजा। असंत – दुष्ट। प्रसन – प्रसन्न, सुहावना।

२२— वन-वन में केशर को विनती हुई मालिनें अपने नखों को

केशर समझ कर भ्रांति में पड़ जाती हैं; उनके पल्लव जैसे हाथ कोमल फूलों के समान हैं और नखों की वास और रंग केशर की वास और रंग के समान ही है।

२३— जैसे वर्षाऋतु के बरसते समय चातक वंचित रह जाता है वैसे वसंत के राज्य में कोई वंचित नहीं रहता। पंख फुलाये पक्षी बोल रहे हैं मानो की हुई सेवा का फल प्राप्त कर बंदीजन कोलाहल कर रहे हों।

२४— संयोगिनी और विरहिणी में मलय पवन के विषय में विवाद हो रहा है। संयोगिनी कहती है कि यह चंदनों वाला शैल (मलयाचल) के संयोग से सुगंध का गुण ग्रहण किया हुआ पवन है। वियोगिनी कहती है कि यह सांपों का भोजन (पवन) है जिसे सांपों ने निगल कर विष के रूप में उगल दिया है।

२५— किसी ऋतु में दिन सुहावना होता है, किसी ऋतु में रात सुहावनी होती है और किसी ऋतु में संध्या रस-मयी होती है, ऐसा सु-कवि कहते हैं। पर दोनों महीनों के दोनों पखवाड़ों में दिन और रात दोनों में वसंत एक समान चलता है (वसंत में दिन-रात एक समान सुहावने होते हैं)।

विशेष अध्ययन के लिए—

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री – संपादक, रामसिंह और पारीक (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)

(२) वेलि क्रिसन रुकमणी री – संपादक, टैसिटोरि (रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता)

सेनापति

षड् ऋतु वर्णन

१—वृख को तरनि—वृष-राशि का सूर्य्य, १४ मई को सूर्य वृष-राशि पर आता है। करि-द्वारा, से तचति—तपती है। झरत झड़ती है; बरस रही है। झरनि – अग्नि। सीरी—ठंढी; छांह का विशेषण। धमका—सन्नाटा। पौनौ–पवन भी। कौनौ–किसी। घामै–घाम के संचय को। २—उवै – उदय होने पर। तपन – जलने। भीखम – भयंकर। सकुचि – भयभीत होकर। चपत – चिपक जाता है; छिप जाता है। सीतलता – शीतलता रूपी लता को। जमाइबे कों–उगाने के लिये। बीज–सीकर-रूपी। ३–तपन– सूर्य। रतिपति–काम, विरहवेदना। सलिल पटैं–पानी-भीगे वस्त्र। भारु–भाड़। तताई–गर्मी। आततताई–अत्याचारी। पुटपाक–भीतर ही भीतर जलाना; औषध को बंद कर मिट्टी के बर्तन में रखकर अग्नि में पकाना ४—जग इ० – जगत तार की जलन से जला जाता है। तरनि इ०– सूर्य मानो अग्नि की झड़ियां बरसाता है। ही-तल – हृदय-तल में। सों–सहित। टि० – इस पद्य में ग्रीष्म और वर्षा का एक साथ वर्णन है। ५—चमकं–धमक। धुवान–बादल। घोर–गरज। कलापी – मोर। जुर – ज्वर। सरसावन – बढ़ाने वाला।

६—धीर-गंभीर। छोह-प्रेम। बर – पति। बांवन की डग– वामन के विराट् रूप के पग की तरह बड़ी। ७—उनये-उमड़े। घूमरत-घूमते हैं। तो इकै-पानी से। हरि – वर्षा के चतुर्मास में भगवान एवं देवता शयन करते हैं। ८—फटिक-स्फटिक नामक पारदर्शी उज्ज्वल पत्थर। छिन – क्षण, क्षण में। छिड़कैं – छिड़कते हैं। छछारैं – छींटे, या धाराएं। छिति-पृथ्वी पर। अछिन-लगातार। सहल – कम। पहल – ढेर। आधान – अधार। ९—राम को सो जस – मानो राम का यश है, साहित्य में यश का रंग श्वेत माना गया है। अध-उरध (अधः ऊर्ध्व) — ऊपर-नीचे; सर्वत्र। ११—गरम – गरमी। लगाइ रहे – आग को। १२—केलि – क्रीड़ा। मूमो-मुग्ध करो। अघटाई-नहीं घटना। तपताल-पताल का पाताल। कहलाइकै-व्याकुल होकर। १३—तुखार— तुषार; पाला। बुखार – भखारी, भंडार। ठिरिकै – ठंढे होकर। द्यौस – दिन। सहसकर-सूर्य। १४—झांई – छाया। चाहत – देखता है। चंद के भरम सूर्य को चन्द्रमा समझ कर, १५—भेंटि-मिल रहा है। श्याम रंग टेसू के पुष्पगुच्छों को पंखड़ियों का रंग गहरा कत्थई होता है जो दूर से श्याम जान पड़ता है। मधुकाज – मधु के लिये। कवला-कोयला। परचाये – सुलगाये। १६—सुरति (१) मूर्ति, सूरत; (२) प्रेम; (३) स्मृति। जउ – क्योंकि। दवन – जलन। रसाल – आम। साल – शल्य, सतानेवाला।

विशेष अध्ययन के लिए

(१) उमाशंकर शुक्ल – कवित्त-रत्नाकर (हिंदी परिषद्, विश्व-विद्यालय, प्रयाग)

बिहारी

दो० १-११—झाँई—छाया, कांति। हरित—हरी। जग-बाइ—जगत की हवा, संसार-निवासियों का प्रभाव। देखिबी—देखना है। बीधे—उलझे हो, फंसे हो। गीधे—ललचाये; परचे। गीधहि—जटायु को। सदन-तन—शरीर रूपी घर में। चकई-चकवानु—रात्रि में चकवा और चकवी एक साथ नहीं रह सकते।

दो० १४-२१—अवगाहि—निमग्न होकर। त्यों—और। चाहना—देखना। जाकी—जिस नायिका की। सबी—तसवीर। कूर भये—ठीक चित्र नहीं खींच सके, इसलिए बेवकूफ बने। जोन्ह—ज्योत्स्ना। चकोर—यह पक्षी हमेशा चंद्र की ओर देखता है, नायिका का मुख चंद्र के समान है, वास्तविक चंद्र के अस्त होने पर चकोर नायिका के मुख की ओर देखने लगता है। चूनो—नायिका मोती की कांति को भ्रम से ओठ पर लगा चूना समझती है।

दो० २३-४०—डटत—शोभा देता हुआ। नट—नटवर श्रीकृष्ण। अटक भटक—भूलभुलैयांशाला। बतरस—बातों का आनन्द लेने के लिये। वृखभानुजा—वृषभानु की बेटी, बैल की बहन। हलधर के बीर—बलराम के भाई, बैल के भाई।

सलोने—(१) सुंदर, (२) नमकीन। लौनु—नमक। पलक—पल भर। पलक—पलकें लगना; निद्रा आना। पलौ—पल भर भी। घेर—निंदा से भरी चर्चा। उहीं—प्रियतम हरुये-धीरे। बिहारीलाल—प्रियतम श्रीकृष्ण। ललन—प्रियतम के। प्यौ—प्रिय। बसाई—रखकर। आवत—स्वप्न में दिखाई देता है। दुखौ इ०—दुःख भी चलने को तैयार हुए हैं।

दो० ४३-५४ —धुरवां—बादल। कोद—ओर। तरसौं हैं—तरसने वाले। परसौं हैं—स्पर्श करने वाले। मेह—मेघ। जीगननु—जुगनुओं को। संसौ—संशय, डर। हंसौ—(१) जीव, (२) पक्षी। मीचसिचानु—मृत्युरूपी बाज। बिहूनियौ—रहित भी। तरौंस—किनारा। खरौंहौ=खारा। अमोस—न सूखने वाली। डगर—गली। नै—नदी। अगर-बगर—घर घर। बार—द्वार। अचकां—अचानक; नहीं तो आपको देखते ही उसकी देह उल्लसित हो उठेगी। झालरति—बढ़ती।

दो० ५६-७७—रूखी रुख—उदासीनता। घनस्याम—(१) काला मेघ, (२) श्रीकृष्ण। सुमन—(१) फूल, (२) श्रेष्ठ मन। बारी—(१) माली, (२) बाला। बारी—बाड़ी। सुहृदयता—प्रेम (श्लेष अलंकार)। मनु—मन। वहै—वही; वैसा ही, जैसा कि कृष्ण के साथ होने पर हो जाता था। गहि रहत—आंखों

को आकृष्ट कर लेता है। गोधन–गोवर्धन पर्वत। नाह–पतिने नाहर–गरज, सिंह जैसी गर्जना के साथ। फौजमें–शत्रुओं की सेना में। परेखौ – किसी के वर्त्ताव को सोचकर दुखी होना। खरे बढ़ै – खरी वृद्धि होने पर; संपन्न होने पर। परिपारि—मर्यादा। अपत – पत्तों से हीन। पटु – वस्त्र। भखु – भोजन। परेई – कबूतरी। परेवा कबूतर। तंत्री –वीणा।

विशेष अध्ययन के लिये

(१) जगन्नाथदास रत्नाकर – बिहारी-रत्नाकर (गंगा-पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ)।

(२) पद्मसिंह शर्मा – बिहारी-सतसई की भूमिका और संजीवन भाष्य।

(३) लाला भगवानदीन – बिहारी-बोधिनी (साहित्य-सेवासदन, काशी)।

(४) रामलोचनशरन – बिहारी-सतसई (हिन्दी पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय)।

(५) रमाशंकर प्रसाद – संक्षिप्त बिहारी, (इंडियन प्रेस, लेमिटेड, प्रयाग)।

(६) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – बिहारी की वाग्विभूति हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी)।

(७) लोकनाथ सिलाकारी—बिहारी-दर्शन (गंगा पु० मा० लखनऊ)।

विशेष अध्ययन के लिए अतिरिक्त ग्रंथ-सूची

(१) रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास (ना० प्र० सभा काशी)।

(२) श्यामसुन्दर दास—हिन्दी भाषा और साहित्य (इंडियन प्रेस, प्रयाग)।

(३) हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका (हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई)।

(४) रामकृष्ण शुक्ल—सुकवि-समीक्षा (हिन्दी भवन, लाहौर)।

(५) शंभूदयाल सक्सेना—काव्यालोचन (नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर)।